पात्र जी उठे

एकांकीकार :

त्रिलोक गोयल

पात्र जी उठे

[समाजोपयोगी आठ अभिनेय एकाँकियों का अभूतपूर्व संग्रह]

एकाँकीकार :

त्रिलोक गोयल

अपना अभिनय करके चल देते हर पात्र।
अमर भूमिकाएँ रहती हैं, शेष न रहता गात्र ॥

राजस्थान अग्रवाल संघ के सौजन्य से

प्रकाशक :

बन्धु प्रकाशन मन्दिर

प्रयाग नरायण मार्ग, आगरा-३

प्रकाशक :—
बन्धु प्रकाशन मन्दिर
कोकामल मार्केट,
प्रयाग नरायण मार्ग, आगरा-३

सर्वाधिकार स्वरक्षित

प्रथम संस्करण :
श्री अग्रसेन जयन्ती, १९७६

मूल्य : चार रुपया

मुद्रक :—
विमल बंसल
विमल मुद्रण केन्द्र
सुई कटरा, आगरा- ३

समर्पण :

जो वसुधा, मेरे पात्रों की लीला स्थलि रही है,
जिन्हें बनाकर माध्यम मैने मन की बात कही है।
वह 'अग्रोहा' चन्दन है, जिसकी मिट्टी का कण-कण,
उसे समर्पित शब्द सुमन ये, सृद्धा स्त्रोत वही है॥

—त्रिलोक गोयल

में यहां हूँ

१.	एक बुद्ध की विद्यालय	....	९
२.	बिम्ब और प्रतिबिम्ब	....	२२
३.	घोषणा आपात् कालीन स्थिति की	....	४१
४.	झेलम का पानी	....	५३
५.	डायरी एक विदेशी की	....	६१
६.	अग्रोहा उद्धार	....	६९
७.	और··· राज्य लक्ष्मी रूठ गई	....	७९
८.	रूप की अर्थी	....	१११

पर्दा उठाओ-पर्दा गिराओ

नाटक और पर्दों का सम्बन्ध अनन्योन्याश्रय है। 'पर्दा' अपने आप में एक बहुअर्थी शब्द है अस्तु पर्दे का पर्दा खोलना सहज नहीं है। एक सिने गीत की पंक्ति है "पर्दा न उठाओ पर्दे में रहने दो।" कल की सी बात है समाज सुधारकों ने पर्दे के विरुद्ध एक आन्दोलन सा छेड़ रखा था—एक शायर ने लिखा है : पूछा जो चन्द बीबियों को "तुम्हारा पर्दा कहाँ गया ?"

बोली "हमारा पर्दा मर्दों की अक्ल पै गिर गया।"

यह सभी जानते हैं पर्दे के पीछे कुछ और होता है, पर्दे के सामने कुछ और पर्दगी और बेपर्दगी में कितनी दूरी है ? बिश्व रंग-मंच का सूत्रधार किस सातवें पर्दे में छुपा बैठा है ? इस पर्दे पर कितने लोग अभिनय कर चुके हैं, कितने और करेंगे ?

मैंने अपने इन एकांकियों में जहाँ अतीत पर पड़े हुए कितने ही पर्दे उठाए हैं, वहां प्रामाणिक इतिहास के अभाव में सत्य पर कल्पना के कितने ही रंग विरंगे मखमली पर्दे गिराए हैं। समाज के 'विष भरे कनक घटों' को बे-नकाब किया है तो उनकी गंदगियां पर विवशता का आवरण भी ढका हैं सच पूछा जाए तो मेरा केन्द्र बिन्दु निर्जीव इतिहास नहीं जीवित मानव है। अस्तु अपवाद होते हुए भी मैंने कल्याणकारी अर्द्ध सत्य तक को स्वीकारा है यह सग्रह विशुद्ध कलाकार की भावना "कला-कला के लिए है" को न नकारते हुए भी सोद्देश्य लिखा साहित्य है।

इन एकांकियों के ऐतिहासिक पात्रों को छोड़कर जितने भी कल्पित पात्र हैं वे वर्गगत हैं—व्यक्तिगत नहीं। किसी से किसी का चरित्र, वेश-भूषा अथवा नाम आदि का मेल खा जाना सिर्फ सयोग है, नाट्यकार की सृष्टि की सजीवता का प्रमाण है। यदि कोई मेरी आलोचना समीक्षा का विषय है तो समूचा समाज ही है, जन सामान्य हैं जन विशेष नहीं।

गगन गामी पक्षी कितने ही पख फैलाकर ऊँची उड़ान डड़े पर अपने पंजे ठोस धरती पर टिकाने ही पड़ते है। प्रामाणिक सामाजिक साहित्य व इतिहास के अभाव में मांगलिक अर्द्ध सत्य किवंदतियों, और आज के यथार्थ को आधार मानकर मैंने कल्पना के पर पसारे। जन श्रुतियाँ आँकड़े नहीं चरित्र प्रस्तुत करती है और मुझे अपने इस नाट्य परिवार के लिए मृत सन् संवत नाम, स्थान नहीं चारित्रिक वैशिष्य ही चाहिए था। मेरा केन्द्र मानव है। "मानव

की कहानी, मानव के लिए" । साहित्यकार-साहित्यकार ही होता है इतिहास कार नहीं, किन्तु भावना का खिलाड़ी भी यदि इतिहास का सामंजस्य करके चले तो शुभ होता है—प्रस्तुत एकांकी इसी के उदाहरण है ।

कविता मेरी कमजोरी है । नाटक लिखूँ या कहानी कवित्व बीच-बीच में बोले बिना नहीं मानता अतः मेरे पात्र अनेक स्थलों पर अत्यन्त भावुक व संवेदनशील हो उठे हैं किन्तु मनोविज्ञान और मानवीय पक्ष उन्हें बराबर साधे रहे है । कथा वस्तु आज की हो या कलकी उसे प्रभावी व स्वाभाविक बनाने के लिए देश काल का ध्यान रखना ही होता है किन्तु रचनाकर जिस युग में जी रहा है उस सामयिक सत्य से अछूता रहे तो कैसे रहे ? क्यों रहे ?

नाट्याचार्य भरत मुनि या अन्य नाट्य शास्त्रियों की दृष्टि से रूपक के अनेक रूप, भेद-उपभेद हैं । मैंने अपनी सीमा में रहकर उनमें से कुछ विधाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । नाटक, नाटिका, एकांकी प्रहसन, रेडियों रूपक (ध्वनि नाट्य) एकाभिनय, सभी इस छोटे से संग्रह में देखे जा सकते हैं ।

समापन से पूर्व उन सामाजिक विभूतियों की दिवगत आत्माओं के समक्ष श्रद्धा नत होना चाहूंगा, जिनके उज्ज्वल चरित्र ने समाज को प्रकाश और, मुझे प्रेरणा दी ? नाटकों के आयोजकों, पाठकों, सम्पादकों के प्रति आभारी हूं जिनके स्नेहसिक्त अनुरोधों ने मुझे यह सब कुछ लिखने को बाध्य किया । राजस्थान अग्रवाल संघ के वर्तमान अध्यक्ष श्री भगवानदास जी डाणी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने पुस्तक को पाठकों तक पहुंचाने का आश्वासन दिया । सर्वाधिक धन्यवाद के पात्र है आदरणीय बन्धु श्री प्रकाश जी बंसल सम्पादक अग्रबन्धु, आगरा, जो मेरे अग्रज के समान है और सामाजिक कार्यों के प्रति जिनका उत्साह असीम है, यदि उनका वरद् हस्त नहीं होता तो यह पुस्तक-पुस्तक न बनकर मात्र पाण्डुलिपि बनी रहती और गणेश जी के वाहनों का शिकार हो जाती ।

.. और इसी तरह, इस अग्रलेख ने इन शब्दों के माध्यम से इस कृति पर कितने ही पर्दे डाल दिए है, कितने ही उठा दिए हैं । 'सुहागरात रात है घूँघट उठा रहा हूं मैं" और पर्दा उठने के बाद आदमी बेसत्र हो जाता है—तो आइए अब नाटक देखें ।

—'त्रिलोक गोयल'

एक युद्ध
दो विद्यालय

इतिहास की एक ईट पर, एकांकी का प्रासाद चना गया है ।
पुरानी ऊन से, नई डिजायन का स्वेटर बुना गया है ।।

एकांकी के आधार :—

△ अग्रोहा में जीर्णावस्था मे प्राप्य सतिशीला तथा महामाया गूजरी की समाधियां ।

△ हासी नगरपालिका कमिश्नर द्वारा अग्रोहा से १५ कोस पश्चिम-उत्तर में युवक गुरुकुल (जिसके नाम पर वहाँ अभी तक बाल सम्बन्ध' गांव है ।) तथा १५ कोस पूर्व दक्षिण में छात्रा विद्यालय (जहाँ आज 'कुमारी गाँव' स्थित है ।) का बताया जाना ।

△ जन श्रुतियें ।

△ मेरी कल्पना, भावना ।

एकांकी के विचार बिन्दु :—

△ छात्र व राजनीति △ साम्प्रदायिकता का विनाश △ युवक आक्रोश
△ दहेज उन्मूलन △ क्षमा व दया का महत्व △ राष्ट्रीय भावना
△ पड़ौसी धर्म △ नारी जागरण ।

पात्र :—

गणपति—अग्रोदक गणराज्य के तत्कालीन गणपति ।
आचार्य—महाराज अग्रसेन गुरुकुल के कुलपति
शीलकुमार—छात्र परिषद का अध्यक्ष तथा नगर सेठ का पुत्र ।
राज्याधिकारी—राज्य का उच्च पदेन अधिकारी ।
लाहोर नरेश—अग्रोदक के समीपवर्ती राज्य लाहोर के छात्रप ।
हरभजनशाह—बावन क्रोड़ी सेठ, शील व शीला का पिता ।
लाहोर नरेश का पुत्र, पुत्री, सेनापति, अग्रोदक के महामत्व तथा स्नातक ।

प्रथम दृश्य

स्थान—अग्रोदक गणराज्य की राजधानी अग्रोहा से १५ कोस उत्तर पश्चिम में स्थित "महाराजा अग्रसेन गुरुकुल" विद्यालय का समागार।

समय—सन् १०५ के आश्विन मास के एक दिवस की मध्यान्ह बेला।

[मच सज्जा—एक उच्च पीठिका पर प्रधानाचार्य (कुलपति) गम्भीर मुद्रा में आसीन हैं। श्वेत केश, शुभ्र लम्बी दाढ़ी, अधोवस्त्र पीताम्बर व उत्तरीय एक मूल्यवान शाल है। समीप ही धोती, अंगरखी पहने विद्यार्थी परिषद के प्रमुख एक सुन्दर युवा शीलकुमार विराजमान है। उनके सम्मुख उसी पीठिका पर राज्य कर्मचारी के उपयुक्त वेशभूषा में एक सन्देश वाहक बैठा है। तीन-तीन छात्र प्रतिनिधि दोनों तरफ स्नातकों की वेश भूषा, जनेऊ धोती आदि में स्थित हैं]

शीलकुमार—(खड़े होकर) परम पूज्य आचार्य श्री व मान्य प्रतिनिधि बन्धुओ! आज विद्यार्थी परिषद की यह बैठक.....

प्रतिनिधि १—बीच में बोलने के लिये क्षमा चाहते हुए मैं यह पूछना चाहूंगा कि नियम के विरुद्ध बिना तीन दिवस पूर्व सूचित किये हुए यह अवैधानिक सभा क्यों बुलाई गई?

आचार्य—(मुस्कराकर) हमें प्रसन्नता है कि हमारे शिष्य नियम पालन के प्रति सजग हैं। जहाँ तक सम्भव हो नियमों का पालन होना ही चाहिए। पर वत्स! नियम मनुष्यों के लिए होते हैं मनुष्य नियमों के लिए नहीं। जनहित ही सर्वोपरि है, परिस्थिति स्वयं में बहुत बड़ा नियम है।

शीलकुमार—तो मैं आचार्य श्री से निवेदन करूँगा कि वे अनुकम्पा करके उस परिस्थिति का उद्घाटन करें, जिसके लिए यह आकस्मिक सभा बुलाई गई है।

आचार्य—अच्छा हो कि परिस्थिति का बोध स्वयं राज्याधिकारी ही अपने मुखारविन्द से करें, जो आज प्रातः ही महामना गणपति का सन्देश लेकर गुरुकुल पधारे हैं।

राज्याधिकारी—वंदनीय गुरुदेव और प्रिय स्नातकों! मुझे दुःख है कि मैं आपके लिए कोई शुभ सन्देश लेकर उपस्थित नहीं हुआ। आपको विदित ही है कि अग्रोदक गणराज्य की राजधानी अग्रोहा के उत्तर पश्चिम में पन्द्रह

कोस की दूरी पर जिस प्रकार यह महाराजा श्री अग्रसेन गुरुकुल है ठीक उसी प्रकार पूर्व दक्षिण में राज्य की सीमा पर महारानी माधवी कन्या महाविद्यालय है.....

शीलकुमार—हाँ! हाँ!! वहीं तो मेरी बहिन कुमारी शीला गत पाँच वर्षों से अध्ययन कर रही है।

राज्याधिकारी—उन्हीं कुमारी शीला के रूप, गुण से आकर्षित होकर पड़ौसी राज्य लाहोर के दस्यु अधिपति ने सीमोलंघन करके उसके अपहरण हेतु शाला पर भयानक आक्रमण किया है।

सब प्रतिनिधि—(आश्चर्यमय आवेश से) हैं! शाला पर आक्रमण किया है?

शीलकुमार—मेरी बहिन के अपहरण हेतु?

राज्याधिकारी—हाँ, कुमार यह कटु सत्य है।

शीलकुमार—गुरुदेव! मुझे आज्ञा दीजिए मैं तत्काल बहिन की रक्षार्थ प्रस्थान करना चाहता हूँ।

सब प्रतिनिधि—हम सब भी शीलकुमार के साथ युद्ध में भाग लेंगे।

आचार्य—शान्त! पुत्र शान्त!! आवेश में कोई कार्य ठीक नहीं होता मैं आपकी भावना की प्रशंसा करता हूँ, एक की समस्या सबकी समस्या है। पर यह अति विचारणीय प्रश्न है, सोच समझ कर ही कदम उठाना होगा।

राज्याधिकारी—गुरुदेव! स्थिति का पता लगते ही सीमा सुरक्षार्थ जो सेना वहां सदैव विद्यमान रहती है वह तो जूझने ही लगी थी पर सन्देश मिलते हीं गणपति स्वयं राजधानी से सैनिक दल लेकर शत्रु का सामना करने निकल पड़े हैं।

आचार्य—हमें राज्य और गणपति की शक्ति पर विश्वास है फिर भी हम स्थिति से पूर्ण अवगत होना चाहते हैं।

राज्याधिकारी—अभी तो अपनी सेनाएं वहां पहुंची भी नहीं होंगी, गणपति ने जाते-जाते यह आदेश दिया था कि मैं आचार्य श्री से निवेदन कर दूँ कि वे समस्त स्नातकों को लेकर सुरक्षा की दृष्टि से अग्रोहा दुर्ग में चले जाएँ। शिक्षण संस्थाओं का संरक्षण राज्य का दायित्व है।

आचार्य—(स्नातकों से) आप लोगों ने गणपति का संदेश सुना, यह राजाज्ञा नहीं राज्य का संदेश मात्र है। राजाज्ञा होती तो हम उसे निश्चित शिरोधार्य करते पर अब आप पूर्ण स्वतन्त्र हैं, जैसा आप लोगों की परिषद निर्णय ले उसी के अनुकूल कार्य किया जाएगा।

शीलकुमार—माननीय ! यह सही है कि भावी आशका से मैं दुःख व क्रोध की स्थिति में हूं (दांत पीसकर) यदि वह नराधम मेरे सम्मुख होता तो न जाने मैं उसका क्या कर बैठता, यह इसलिए नहीं कि यह मेरी बहिन का मामला है, यह सम्पूर्ण गण की बेटी की प्रतिष्ठा का प्रश्न है।

सब प्रतिनिधि—शीलकुमार की बहिन हम सबकी बहिन है।

प्रतिनिधि २—मेरी सम्मत्ति में सम्पूर्ण गुरुकुल के छात्रों को युद्ध में भाग लेकर गणपति के हाथ मजबूत करने चाहिए।

आचार्य—जहां तक सामान्य मत है विद्यार्थियों का कर्म क्षेत्र अध्ययन है, राजनीति से उन्हें दूर ही रहना चाहिए। गंगा में गंदा नाला न मिले तो ठीक ही है।

प्रतिनिधि ३—नदी नाले के पास नहीं जाती, नाला ही नदी के पास आता है। गुरूदेव ! गदा नाला मिलने से भी गंगा की पवित्रता पर आँच नहीं आती वरन् गदला जल भी गंगाजल हो जाता है। जहां तक मेरा मत है सामान्य मत सामान्य स्थिति में ही मान्य होता है, युद्ध किसी भी देश के लिए सामान्य स्थिति नहीं है।

प्रतिनिधि ४—(आवेश में) यह हमारे पौरुष और उष्ण रक्त पर काला दाग होगा कि देश संकट के समय हम चूड़ियां पहिन कर अबलाओं की तरह किले में छिपे रहकर प्राण रक्षा करें। इतिहास ऐसे क्लीवों को कभी क्षमा नहीं करता।

सब प्रतिनिधि—(जोर से) हम सब युद्ध में भाग लेना चाहते हैं। हम अविलम्ब युद्ध में जाना चाहते हैं।

आचार्य—(हाथ उठाकर) शान्त ! शान्त !! सर्व सम्मति से लिये गए इस समयानुकूल निर्णय का हम हार्दिक स्वागत करते हैं (राज्याधिकारी को सम्बोधित कर) महोदय ! संकट कालीन स्थिति नहीं होती तो चार दिन

आपका आतिथ्य कर हमें प्रसन्नता होती किन्तु अब आप भोजनोपरान्त तत्काल प्रस्थान कर परिषद के निर्णय से राज्य को अवगत करें।

राज्याधिकारी—(प्रणाम कर प्रस्थान करते हुए) जो आज्ञा देव !

शीलकुमार—अब हम लोगों को युद्ध की योजना बना लेनी चाहिए।

आचार्य—शील का कथन सत्य है। सम्यक योजना ही सफलता की सीढ़ी है। मेरे विचार से गुरुकुल के शस्त्र शिक्षण अधिकारी जी के नेतृत्व में शाला के शिक्षण शस्त्राशस्त्रों को लेकर यह छात्र वाहिनी शत्रु दल पर टूट पड़े। अत्याचार और हिंसा को सदैव के लिए मिटाने हेतु कभी-कभी हिंसा का आश्रय लेना ही अहिंसा है।

शीलकुमार—क्षमा हो देव ! मेरे दो निवेदन हैं। प्रथम तो यह कि मेरे हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला भड़क रही है, मैं चाहता हूं कि शत्रु का शीश अपने हाथ से काटूँ। इस लिए युद्ध का सेनापति मैं रहूंगा।

आचार्य—और दूसरा ?

शीलकुमार—दूसरा यह कि रिपुदल के सम्मुख तो राज्य वाहिनी प्रतिरोध कर ही रही है, क्यों न हम लोग पार्श्व से आगे बढ़कर सहसा पीछे से आक्रमण कर दें। इस दुतर्फी मार से निश्चित रूप से ही वह पिस जायेगा।

प्रतिनिधि ५—सुझाव अति सुन्दर है ! युद्ध में कूटनीति अपनानी ही पड़ती है।

प्रतिनिधि ६—कूटनीति का उत्तर कूटनीति से ही देना पड़ता है मित्र ! विद्या मन्दिरों पर, निरीह छात्राओं पर आक्रमण करना किस नीति की पुस्तक में लिखा है ? सांप को दूध नहीं पिलाया जाता उसका फन कुचलना ही श्रेयस्कर है।

आचार्य—(मुस्कराकर) आप लोगों के तर्क सबल हैं। सत्यासत्य की परख कर सकना ही विद्यालय की कसौटी है। हमें अपने गुरुकुल के स्नातकों पर गर्व है। अब हम परिषद की भावनाओं को समझते हुये आयुष्मान शीलकुमार को इस राष्ट्रीय युद्ध का नेतृत्व सौंपते हैं। (एक दम तालियों की गड़गड़ाहट से सभागार गूँज उठता है, शोर रुकने पर) अब रही युद्ध नीति

और संचालन विधि की बात, सो जैसे हमारे सुयोग्य छात्र सेनापति आदेश देंगे हम उसी के अनुकूल कार्य करेंगे ।

प्रतिनिधि १—सेनापति शीलकुमार (सिंहनाद के स्वर में)

सब लोग—अमर रहें ।

प्रतिनिधि १—हमारी विजय

सब लोग—निश्चित होगी ।

शील कुमार—मैं आचार्य श्री को विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि वे पूर्ण आश्वस्त रहें—हमारे साथी सबके सब विश्वसनीय हैं । वे हँसते-हँसते देश धर्म पर प्राण तो दे सकते हैं पर किसी भी मूल्य पर शत्रु का साथ नहीं दे सकते । साथ ही प्राणों से प्यारे अपने साथियों से अनुरोध करूँगा कि वे शत्रु प्रदेश की निरपराध प्रजा के साथ किसी भी प्रकार का अमानवीय व्यवहार नहीं करेंगे । पूर्ण अनुशासित रहकर ही कार्य किया जायेगा ।

सब प्रतिनिधि—ऐसा ही होगा । ऐसा ही होगा ।

आचार्य—(गद् गद् होकर) जिस राज्य के नवयुवक ऐसे उत्साही और उत्कृष्ट हों, जहाँ के छात्र इतने मेधावी और अनुशासित हों उसकी पराजय हो नहीं सकती । (आशीर्वाद देते हुये) प्रभु सबका कल्याण करे ।

—: पटाक्षेप :—

—: **द्वितीय दृश्य** :—

स्थान—युद्ध प्रांगण ।

समय—संध्या से कुछ पूर्व का ।

[मंच सज्जा—पृष्ठ भाग में स्थान-स्थान पर कटे शरीर, कोहराम, जयनादरथ, हाथी, घोड़े तथा मंदिर स्वर में रण वाद्य यंत्र]

लाहोर नरेश—(रण सज्जा से युक्त शस्त्र कवच आदि, देह पर जगह-जगह रक्त, पसीना पोंछते हुये अपने सेनापति से कह रहे हैं) उफ ! क्या सोचा था, क्या हो गया । सीमा सुरक्षा की दृष्टि से रखी गई अग्रोदक की मुट्ठी भर सेना ने जो मार मारी है वह लाहोर जीवन भर नहीं भूल सकता लेकिन ···

सेनापति—लेकिन क्या महाराज ?

लाहोर नरेश—लेकिन राजधानी अग्रोहा से सेना आने से पूर्व विद्यालय की बालिकायें जिस वीरता से लड़ी हैं उसकी मिसाल इतिहास में दूसरी नहीं मिल सकती । हिरणियां भूखी सिंहनियाँ हो गई थीं ।

सेनापति—और विद्यालय की गुरुमाता ? गुरुमाता हमारे एक-एक योद्धा को ऐसे काट रही थीं जैसे साक्षात दुर्गा ही रणांगण में उतर आई हो । पर आश्चर्य तो ये है कि गूजरी होते हुये भी उसने अग्रवाल विद्यालय के लिये प्राण दिये ?

लाहोर नरेश—अब वह मारवाड़ की नहीं अग्रोदक की नागरिक थी, अग्रवालों का नमक उसकी नस-नस में था । साथ ही अग्रोदक गण राज्य इतने उदार विचारों का है कि वहाँ जातिगत भेद-भाव को कोई स्थान नहीं है ।

सेनापति—हाँ महाराज ! सुना है कि वहाँ सिर्फ योग्यता की पूजा होती है । वहां का हर नागरिक राज्य के लिये प्राण देता है, इस अद्भुत राष्ट्रीयता पर आश्चर्य होता है ।

लाहोर नरेश—आश्चर्य गूजरी गुरुमाता से भी अधिक मुझे तो कुमारी शीला पर होता है सेनापति ! एक वणिक पुत्री ने, एक फूल जैसी कोमल कली ने, चूड़ियों वाले हाथों में तीक्ष्ण तलवार लेकर जिस कुशलता से चलाई है वह क्या भुलाया जा सकता है ?

सेनापति—पर उनका शौर्य और शक्ति सब धरा रहा महाराज हमारी अपरिमित सेना के सामने उनकी एक न चली । विद्यालय की ईंट से ईंट बजी, गुरुमाता के शव को लेकर केवल कुमारी शीला ही सती नहीं हुई समस्त छात्रायें अपनी आबरू बचाने के लिये राष्ट्र के इस महायज्ञ में स्वाहा हो गईं ।

लाहोर नरेश—यही तो हमारी पराजय है सेनापति ! हम कुमारी शीला को अपनी अंक शायिनी बनाना चाहते थे पर वह नहीं मिली, मिली उसकी भस्मि, रूप और यौवन की राख । इतने जन धन की क्षति हुई, पड़ौसियों के कोप भाजन बने सो अलग ।

[लाहोर नरेश के पुत्र युवराज का दौड़ते हुये प्रवेश]

युवराज—(घबराकर) महाराज ! महाराज !!

लाहोर नरेश—क्या है कुमार ?

सेनापति—आप इतने घबराये हुये क्यों हैं युवराज ?

युवराज—क्या कहूं पिताजी, जौहर में सब कुछ समाप्त हुआ समझकर जैसे ही अपना कटक हर्षनाद करता हुआ लाहौर की तरफ कूच करने वाला था कि अग्रोहा से कुमुक लेकर गणपति आ धमके। उस घमासान से हम सब विचलित थे ही कि सहसा ही पीछे से एक युवक सेना हम पर बाज की तरह टूट पड़ी, हम दो पाटों के बीच में बुरी तरह कुचले जा रहे हैं महाराज !

लाहोर नरेश—(चौंककर) हैं ? युवा सेना ! ये युवा सेना किसकी है सेनापति ! क्या तुम्हारा गुप्तचर विभाग सोता है ?

सेनापति—मैं अभी पता करता हूं महाराज।

युवराज--पता तुम क्या करोगे सेनापति ! मैं बताता हूं, ये सेना है अग्रोदक राज्य के बाल समंध क्षेत्र में स्थित महाराजा श्री अग्रसेन गुरुकुल के छात्रों की। उनका सेनापति है शीला का भाई शील कुमार।

लाहोर नरेश--(आश्चर्य से) सेठ हरभजनशाह का पुत्र शील कुमार ? (शील कुमार का रक्त स्नात, नगी तलवार लिए प्रवेश, साथ हैं गणपति व अग्रोदक के महामात्य)।

शीलकुमार--हाँ, तुम्हारा काल शीलकुमार (एक ही बार में युवराज का शिरच्छद कर देता है ! महामात्य सेनापति को मार डालते हैं तथा गणपति लाहोर नरेश पर घातक प्रहार करने को हाथ उठाते हैं)।

लाहोर नरेश--(गणपति के समक्ष घुटने टेक कर) मैं लज्जित हूँ गणपति ! क्षमा प्रार्थी हूं।

गणपति—(व्यंग से) लज्जा और क्षमा ! तुम्हारे जैसे दस्यु के मुँह से ये बातें हास्यास्पद प्रतीत होती हैं ! निस्सार है !! तुझे अपनी करनी का फल पाना ही होगा (मारना चाहता है)।

आचार्य - (गणपति का हाथ पकड़कर) श्रीमन् ! दया वीर का आभूषण है। इस शरणागत अधम को क्षमा करना ही इसकी वास्तविक मृत्यु है, सच्ची मानवता है।

शीलकुमार—मानवता का व्यवहार मानव के साथ किया जाता है देव ! जब हम किसी पर आक्रमण नहीं करते, पड़ोसियों के साथ मधुर सम्बन्ध

बनाए रखने में हमारी आस्था है, फिर ये नारकीय कीट सरस्वती धाम पर आक्रमण करे यह कहाँ का न्याय है ?

आचार्य—तुम्हारा आवेश अस्वाभाविक नहीं है वत्स ! मैं तुम्हारी पीड़ा को पहिचानता हूँ।

शीलकुमार—मेरे हृदय में एक बहिन की नहीं, सैकड़ों बहिनों की चिता ज्वाला बनकर धधक रही है आचार्य श्री !

आचार्य--प्रतिशोध की अग्नि को प्रेम के छींटे ही शान्त कर सकते हैं शील ! समय बताएगा कि इसकी शारीरिक हत्या के बनिस्पत इसके भीतर के दानव की हत्या करना अधिक हितकर रहा, सर्प का विषदन्त तोड़ना ही पर्याप्त होता है।

गणपति—(छोड़कर) जा अधम ! दयालु गुरुदेव ने तेरे प्राण बचा दिये हैं, अब कभी भूल कर भी इधर मुँह किया तो ठीक नहीं होगा।

लाहोर नरेश—परम भागवत आचार्यश्री का ही नहीं मैं महामात्य, गणपति और शीलकुमार सभी का चिर कृतज्ञ रहूँगा। मुझे अपने पापों का पर्याप्त फल मिला है. मेरा युवा पुत्र मारा गया, मेरी पराजय हुई फिर भी मैं प्रायश्चित स्वरूप अपना समस्त राज्य अग्रोदक को अर्पित करना चाहता हू।

गणपति—अग्रोदक किसी की विवशता से लाभ नहीं उठाता लाहोराधिपति ! वह विस्तारवादी नीति से घृणा करता है। हमें आपका राज्य नहीं चाहिए, हम अपने ही साधनों और प्रयत्नों से जीना जानते हैं।

लाहोर नरेश—यही अन्तर है देव आपमें और हममें यह दस्यु प्रवृत्ति, यह कामुकता ही हमारे कलंक का कारण है। (आचार्य के चरण स्पर्श कर) आचार्य श्री ! आपने ही मुझे प्राणदान दिलाया है, आप ही मुझे कोई ऐसा सुमार्ग दिखलाएँ जिससे मुझे मानसिक शान्ति प्राप्त हो सके।

आचार्य—उठो राजन ! यह तुम्हारे पापों की संध्या है। यह शुभ लक्षण है कि तुमने अपनी भूल समझली और उसका सुधार चाहते हो। मेरा सुझाव है कि अपनी पुत्री का विवाह गणपति के पुत्र से करके टूटे सम्बन्ध को पुनः जोड़ सकते हो।

लाहोर नरेश—आपने मुझे अन्धकार में प्रकाश दिखलाया है पूज्यवर ! मैं अपनी पुत्री को अग्रोदक में देना अपना व उसका सौभाग्य मानूँगा ।

गणपति—राजन आपकी कन्या सुलक्षणा व सुन्दर है उसका आगमन मेरे घर की शोभा ही बढ़ाता किन्तु मेरी दृष्टि में आपकी पुत्री को ग्रहण करने का उचित अधिकारी श्रेष्ठी पुत्र शीलकुमार है ।

लाहोर नरेश--मुझे इसमें और भी प्रसन्नता होगी जामाता और पुत्र में कोई अन्तर नहीं होता गणपति ! मेरा पुत्र युद्ध में काम आया अब शीलकुमार ही उसका स्थानापन्न होगा ।

शीलकुमार—मैं आप सबके आग्रह के सम्मुख नतमस्तक हूँ पर विवाह की अनुमति देने का अधिकार पिताजी को ही है ।

आचार्य—हाँ शील का कथन सर्वथा उपयुक्त है, वास्तव में ही उन्होंने अपने नाम के शील शब्द को सार्थक किया है ।

गणपति—तो चला जाए हम सभी इस युद्ध के झमेले में इनके पिता श्रेष्ठी हरभजनशाह को तो भुला ही बैठे, सुना है पुत्री के वियोग में उनकी दशा विक्षिप्तों जैसी हो रही है, वे सती शीला और गुरुमाता गूजरी की समाधि बनवाने में अपरिमित धन राशि व्यय कर रहे हैं ।

सभी लोग—चलो वहीं चला जाय (सभी का प्रस्थान) ।

—: पटाक्षेप :—

: तृतीय दृश्य :—

स्थान--महारानी माधवी कन्या विद्यालय के प्रागण में स्थित दो भव्य समाधियाँ व आस-पास कुछ छोटी बड़ी छतरियाँ ।

समय—प्रभात बेला ।

[मंच सज्जा—पृष्ठ भूमि में खण्डित विद्यालय भवन, अग्रभाग में दो स्फटिकी सुन्दर समाधि में धूपदान से धूम्र उठ रहा है, समाधियों पर पुष्प अर्पित करते हुए मलिन वस्त्रों में विक्षिप्त हरभजनशाह दृष्टिगोचर होते हैं कुछ भोपे मोपण, मक्त तान पूरे पर मद स्वर में सती माता का विरद बखान रहे हैं । सहसा लाहोर नरेश, उनकी पुत्री, (वधु वेश में) गणपति, शीलकुमार तथा आचार्य आदि आते हैं ।]

गणपति—(करुणान्द्र होकर) आपने देखा आचार्य श्री नगर सेठ हरभजन शाह की दुर्दशा, कौन कह सकता था कि महम के बावन क्रोडी सेठ और अग्रोहा के उद्धारक को एक दिन यह सब कुछ भी देखना पड़ेगा ।

आचार्य--सन्तान का मोह ऐसा ही होता है गणपति । यद्यपि उनकी पुत्री ने अपने बलिदान से अग्रोदक की कीर्ति में चार चांद ही लगाए हैं पर उसके अभाव का दुःख क्या सहज ही सहा जा सकता है ?

(शीलकुमार दौड़कर शीला की समाधि से लिपट कर रो पड़ता है पिता उसे गले लगाता है—दोनों पिता पुत्र सिसकते हैं ।)

शीलकुमार--(नेत्र पौंछते हुये) पिताजी ! शीला हमें सदा-सदा के लिए छोड़ गई ।

हरभजनशाह--नहीं बेटा ! वह तो हमारे हृदय में हैं, वह मानवी से देवी बन गई है । (सब निकट आते हैं) ।

आचार्य--धैर्य से काम लो शाह जी ! भाई और पिता की आँखों में आँसू देखकर शीला की आत्मा को शान्ति नहीं मिल सकेगी ।

हरभजनशाह— शान्ति ? (अट्टहास) हः हः हः (लाहोर नरेश को देखकर झपटते हुए) मेरी शान्ति में आग लगाने वाले दस्यु अभी इन बूढ़ी हड्डियों में इतनी जान है कि तेरे जैसे दस के लिए पर्याप्त है । (गणपति हरभजनशाह को पकड़ लेते हैं ।)

गणपति—श्रेष्ठिवर ! लाहोर नरेश अपनी करनी के लिये लज्जित हैं अब वे राज्य के शत्रु नहीं शरणागत हैं । अपने अपराधों की क्षमा याचना हेतु ही आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं ।

लाहोर नरेश—(नतमस्तक होकर शाहजी) ये अधम आपका अपराधी है शाहजी ! निश्चित ही मैंने आपकी कभी न पूरी होने वाली क्षति की है, जो चाहो सजा दो ।

हरभजनशाह—(सर पकड़कर) ओह मैं क्या करूँ, दस्युराज तुम मेरी दृष्टि से दूर हो जाओ ! मुझे अपने हाल पर छोड़ दो, तुम्हें सजा देने से मेरी पुत्री लौट नहीं आयेगी ।

लाहोर नरेश की पुत्री—(चरण छूकर) पुत्री लौट आई है पिताजी ! अपने पिता का प्रायश्चित मैं करूँगी। पुत्र-वधु के रूप में आपके चरण कमलों की सेवा कर मुझे सुख मिलेगा।

हरभजनशाह—(आश्चर्य से) तुम लाहोर नरेश की पुत्री हो ! मेरी पुत्र वधू बनने की कामना करती हो।

गणपति—हाँ हरभजन जी ! पुत्री गई पुत्र-वधु आई, अभाव की कुछ ही सही पर पूर्ति तो है। फिर युद्ध में आपकी पुत्री गई तो लाहोर नरेश का पुत्र, हिसाब बराबर।

आचार्य—वणिक घाटे का व्यापार नहीं करते श्रेष्ठी जी ! जब सर्वस्व जा रहा हो तो जो कुछ प्राप्त हो सके वही लाभ है।

यह आप के दुखों की रात की उज्वल उषा है, बैर भाव भुलाकर इसे अपनाएं। घर आई लक्ष्मी को आशीर्वाद दें।

हरभजनशाह—(शीलकुमार से) आओ पुत्र ! वधु को स्वीकारो (दोनों के हाथ पकड़ा देता है। वर-वधू परस्पर वरमाला पहिनाते हैं सब तालियाँ बजाते हैं। नव-दम्पत्ति सेठजी के व उपस्थित सभी लोगों के चरण छूते हैं वे आशीर्वाद देते हैं।

लाहोर नरेश—कन्यादान के सुअवसर पर मैं अपना आधा राज्य अपने जामाता शीलकुमार को दहेज में देता हूँ।

हरभजनशाह—मुझे दहेज शब्द से ही घृणा है समधीजी, जब आपने मुझे कन्या दी है तो सब कुछ दे दिया है। कुल देवी भगवती लक्ष्मी और पूर्वज महाराज श्री अग्रसेन जी की मुझ पर असीम कृपा है दोनों हाथों से लुटाने पर भी मेरी झोली भरी की भरी रहती है, यदि खाली भी होती तो भी मैं अपने पुत्र को बेचना पसन्द नहीं करता।

लाहोर नरेश—आप धन्य हैं शाह जी ! पर जिस दान का मैंने संकल्प कर दिया है उसे वापस कैसे लौटाया जा सकता है ?

शीलकुमार—आप उस समस्त धनराशि को दोनों ही राज्यों के युद्ध में काम आए सैनिकों के परिवारों की सहायतार्थ व्यय करदें, इससे उत्तम उपयोग और क्या होगा।

लाहोर नरेश—यही नहीं उस बालिका विद्यालय का जीर्णोद्धार कराना भी मेरा दायित्व है।

आचार्य—आइये ! इस पुनीत अवसर पर नवदम्पत्ति के साथ-साथ हम लोग भी सतियों की भस्म मस्तक पर लगाए।

गणपति—केवल शीलकुमार ही नहीं अग्रोदक राज्य का हर नव विवाहित जोड़े से आकर सतिमाता के मन्डप में जात देगा, बच्चों के जडूले उतराएगा। (सब लोग चबूतरे से भस्म मस्तक पर लगाते हैं, धोक देते हैं पुष्पांजलि चढ़ाते हैं भोपा भोपण के गीत व वाद्य यन्त्रों के स्वर उभरते हैं)।

आचार्य—(जोश से) सति शीला की

सब लोग—जय !

आचार्य—(जोश से) महामाया गूजरी की !

सब लोग—जय

—: पटाक्षेप :—

एक श्रव्य दृश्य रूपक

बिम्ब
और प्रतिबिम्ब

यथार्थ को, कल्पना के पट पर चित्रित किया है।
समाज की रेखाओं में हास्य, व्यंग का रंग दिया है ।।

छायापट अथवा झलकियों के माध्यम से अभिव्यक्ति की आधुनिक शैली पर लिखा एकांकी

सृष्टि पर दृष्टि :—

△ कवि का कर्तव्य, समाज की समस्याएं,
माँ की ममता

पात्र :—

अग्रसेन—स्व० अग्रोहा नरेश (अग्रवाल जाति के संस्थापक)।

जसराज—राज कवि (अग्रसेन का भाणेज योगी)।

माधवी—अग्रसेन की महारानी (नाग कन्या)।

सुलोचना—माधवी की परिचारिका।

उर्वशी—स्वर्ग की नर्तकी (इन्द्र की अप्सरा)।

सास, बहू, विधवा, नागरिक, सिपाही, गुण्डे, बिना पर्दे वाली महिला, सेठ, पंच, चार सरदार, भिक्षुक, सेवक आदि।

प्रथम दृश्य

स्थान—बैकुण्ठ लोक।

समय—प्रातः।

[मंच सज्जा—महाराज श्री अग्रसेन मखमल शैया पर जरी का लाल शाल ओढ़े शयन किये हुए हैं, पार्श्व में छतर चंवर टके हैं, दीपक जल रहा है, एक परिचारिका रजत छड़ की मयूर व्यजनिका झल रही है]

[नेपथ्य से तुरई, नौबत बजने की मंगल ध्वनि के साथ महाराज का अंगड़ाई लेकर उठना, चारण जसराज का प्रणाम करते, विरद गाते प्रवेश।]

जसराज—

अग्रवाल धनवान, छत्रवान, पुत्रवान।
सांवरी बेल कल्याण वान।
राजा वास : के दोहात मान।
आगे नौबत निशान ।।
अग्रसेन शुभ नाम, अग्रकुल कियो उजागर।
अग्रवाल भूपाल वैश्य कुल कीर्ति कलाधर।
अग्रोहा उत्पन्न भये साढ़े सत्रह गोत।
महाराज के वंश की बढ़े बराबर ज्योति ।।

[पुष्प उछालते हैं]

(महाराज के संकेत से परिचारिका मोतियों का थाल प्रस्तुत करती है, महाराज उसे भाट को प्रदान करते हैं, जिसे वह नम्रता से ग्रहण करता है।)

अग्रसेन—धन्य हो जसराज, तुम्हारे वंशजों की काव्यमय वाणी ने ही हमारा यश आज तक अक्षुण्ण रखा है।

जसराज—यह आपकी उदारता है देव, सूर्य का प्रकाश भला कौन नहीं जानता (आरती का थाल लिये, महारानी माधवी का पूर्ण श्रृंगार युक्त प्रवेश करते हुये कथन)

माधवी—कभी कभी सूर्य पर भी मेघ छा जाते हैं चारण, तुम्हारी लेखनी पुरानी पड़ चुकी है, इसमें पुनः प्राण संचार की आवश्यकता है, अतीत के गौरव गाना बुरा नहीं है, पर बुरा है वर्तमान को भुला देना।

जसराज—सेवक समझा नहीं महारानी ।

माधवी—(आरती का उपक्रम करते हुये) यह सब अपने मामा से ही पूछो जसराज ! जिनका बिरद तुम गा रहे हो ।

अग्रसेन—महारानी आज क्या बात है ? सब कुछ विचित्र सा दिख रहा है । ये श्रृंगार, ये आरती, ये तीखी बातें ।

माधवी—स्वर्ग में आकर आप तो सब कुछ भूल गये है महाराज ! जैसे अपनी सन्तान को भूले वैसे ही यह भी भूल गये कि आज आश्विन शुक्ला एकम है आपका जन्म दिवस ।

अग्रसेन—(आश्चर्य से) सन्तान को भूले ? ये कैसे महारानी ?

माधवी—हमें बैकुण्ठ आये कितने युग हो चुके हैं स्वामी ! क्या एक बार भी पृथ्वी पर जाकर हम लोग अपने वंशजों को देख सके ? क्या आपने कभी किसी को भेज कर उनके समाचार मंगाये ? न जाने वे सुखी हैं या दुखी (आँचल से आंखें पोंछती है)

अग्रसेन—लो आँखें भर लाई, पति के जन्म दिन पर पत्नी उदास हो यह अच्छा नहीं लगता ।

माधवी—आंसू किसी को अच्छे नहीं लगते महाराज ! पर विवश अबला और कर ही क्या सकती है, पति और पुत्र, स्त्री के दो नेत्र हैं । एक आँख हसे और दूसरी रोये भला ये कैसे सम्भव हो सकता है ।

अग्रसेन—निश्चित रहो महारानी ! मेरी सन्तान को कभी कोई कष्ट नहीं हो सकता ।

माधवी—मैं माँ हूं, मैं नारी हूं, मेरी ममता मुझे कब निश्चित रहने देगी महाराज ।

अग्रसेन—अर्थात पुरुष और पिता कठोर होते हैं, हः हः हः हः (हँसते हैं) कवि ! सुना तुमने, महारानी हम पर आरोप लगा रही हैं ।

जसराज—और दास की कलम पर भी ।

माधवी—सत्य कटु होता है भाट ! तुमने केवल प्रशस्ति लिखना ही सीखा है ।

जसराज—चारण लिखना ही नहीं मरना भी जानता है, महारानी ! क्या सेवक को अपना इतिहास स्वयं कहना होगा ।

अग्रसेन—नहीं, हम तुम्हें जानते हैं जसराज ! महारानी भी तुम्हें जानती हैं, पर वे हमें जगाना चाहती हैं । तुम्हारी लेखनी का जंग छुड़ाना चाहती हैं—उसके लिये तुम्हें एक काम करना होगा ।

जसराज—महाराज आज्ञा दें, सेवक प्रस्तुत है ।

अग्रसेन—आज ही तुम भूलोक को प्रस्थान करो अग्रवाल समाज की अवस्था, उनके दुख-सुख, उनकी संस्कृति सभी का अध्ययन करो । अपने अनुभवों की कहानी काव्य में संजोकर आज से ठीक एक वर्ष पश्चात् हमारे जन्म दिन पर उसे प्रस्तुत करो ।

जसराज—ठीक है महाराज ! इससे मेरी लेखनी को नवीनता मिलेगी, दास अभी ही प्रस्थान कर रहा है । (जाने लगता है)

माधवी—ठहरो जसराज ! मामी से रुष्ट होकर कैसे जा सकते हो (दासी को सम्बोधन कर) सुलोचना !

सुलोचना—आदेश महारानी जी ।

माधवी—सिरोपाव प्रस्तुत करो ।

सुलोचना—जो आज्ञा (प्रस्थान)

माधवी—(महाराज की आरती कर चरण छूती है, दासी थाल में सिरोपाव लाती है, उसे लेकर महाराज को देते हुये) लीजिये महाराज, अपने हाथों कवि को यह सम्मान दें ।

अग्रसेन—(जसराज के केसरिया पगड़ी बाँधते हुये) जाओ कवि भगवति वीणा पाणि तुम्हारी तूलिका पर अपना वरद हस्त रखे ।

जसराज—सेवक अनुगृहीत है, आपका आशीर्वाद मेरा मार्ग दर्शन करेगा ।

माधवी—लाओ तुम्हारी लेखनी से कुमकुम लगा दूँ ।

जसराज—(कलम देते हुये) लीजिये महारानी ! जसराज के लिये मंगल कामना करो कि वह आपका कार्य पूरा कर सके ।

माधवी—हमें तुम्हारी शक्ति का पूरा भरोसा है । (कुमकुम लगा कर कलम वापिस देती है कवि का प्रस्थान ।)

सेवक--(प्रवेश कर प्रणाम करते हुये) महाराज की जय हो ! स्वर्गवासी समस्त अग्रवंशी आपके दर्शनों के लिये लालायित द्वार पर खड़े हैं।

माधवी—उन्हें सम्मान पूर्वक अतिथिशाला में बैठाओ (महाराज से) शीघ्रता कीजिये महाराज ! दान, पुण्य, उत्सव, भोज आदि अनेक कार्य अभी जन्म दिन के शेष है ।

अग्रसेन--चलो महारानी । (प्रस्थान)

—: पटाक्षेप :—

—: द्वितीय दृश्य :—

स्थान—अग्रोहा

[मंच सज्जा—साधारण नागरिक के वेश में जसराज यत्र तत्र भ्रमण कर रहे हैं हाथ में कलम तथा कागज है, जिनसे वह अक्सर कुछ लिखते रहते हैं]

जसराज—(एक पथिक से) राम राम सेठजी ।

सेठ—राम राम साहब ।

जसराज—ये कौन-सा नगर है ।

सेठ—अग्रोहा है जी, परदेसी मालूम पड़ते हो ।

जसराज—हां भाई हूँ तो परदेसी, एक बात बताओगे ।

सेठ—क्यूंनी, क्यूंनी बताबा का कोई टका लागे है ।

जसराज—यहाँ के प्रसिद्ध अग्रवालों के नाम बता सकते हो । (सेठ नाम बताते हैं जसराज बही में नोट करता है ।)

सेठ—एक तो मैं खुद ही हूँ जी, और बाकी यान तो मोकला ही है, लाला करोड़ी मल जी मीलवाला, गूदड़मल जी सलीमा वाला, उकील साहब फौक्टमल जी, सुधारक परउपदेसीजी घणा ही है कान काटयां कूआं भरे ।

जसराज—(हाथ जोड़ कर) अच्छा सेठ जी, कष्ट के लिये धन्यवाद ! जय गोपाल जी की ।

सेठ—जै गोपाल जी की, जै गोपाल जी की । (प्रस्थान)

जसराज—(स्वगत) चलो जसराज अब एक-एक के घर का हाल देखो और लिखो ये लोग समाज के दर्पण हैं । (प्रस्थान)

झलको एक

(साधारण राजस्थानी परिवार की बहू बर्तन साफ कर रही है, प्रौढ़ा सास कुछ बर्तन और लाकर पटकते हुये व्यंग व क्रोध से ।)

सास—बरतण माँज री है क मैंदी लगा री है पद्मणी (मारते हुये) काम चोर कठेई की बैठी-बैठी ऊँगरी है हाल तो सारो काम करणी बाकी पड़यो है, बासण माँजना, धान चून चुगणो, पिसणो, गाबा धोरणा, रोटयाँ करणी (सर पे हाथ लगाते हुये) जाणे कठे बैठी ही करमाँ में, मौत भी न आवे, खाबा ने डाकी काम ने माखी, कहयो हो तो बो नास पीटया बाबल्या ने जो काम करबा ने राणी जी के लेर एक बांदी भेज दे तो ।

बहू—थे भी बाईजी की लेर बाँदी भेजी होली, ठाला काम का म्हारा बाप ने क्यूं गाल्यां काढो हो ।

सास—(हाथ मटका कर) ओ हो कस्योक कसड़को आयो है मूंडी काटया को—काँई धूंस पड़ी है थारी र थारा बाप की एक बार नी हजार बार गाल्यां काढूँ बो राखूड़यों ही तो आ घट्टो बाँधी है म्हारे फूल-सा छोरा रागला में ।

बहू—म्हारी माँ ने मैं भी फूल ही लागे ही, काँटो तो अठे आर होयगी—कांई खोट है म्हारे में थांके बेटा सूं तो गोरी हूँ ।

सास—(मारते हुये) चुडेल सामी बोले है चपर चपर, म्हारे बेटा री होड करे—सेठ लिखमी चन्द जी गर्ग ठेकेदार, चम्पालालजी गुप्ता, उकील साहब रामरतनजी डीडवाण्या री छोरयाँ री सगायां आई ही म्हारे घसीटा रे—ग्यारह-ग्यारह हजार रोकड़ी तो टीका में देवे छा हथलेवा, पहरावणी, जान री सरभरा किरायो भाडो न्यारो ।

बहू—तो व्याके ही करली होती, मैं भी क्वाँरी तो को रहती नी कोई गरीब गुरबा के ही चली जाती तो पूरी रोटी तो मिलती, पण तकदीर जो फूटयोड़ा हा नीं तर थांके पाने क्युं पड़ती ।

सास—तकदीर तो म्हाका फूटयोड़ा हा, जो तू पाने पडी—क्यूं तो थारो बाबल्यो चालीस हजार रुपिया लगाबा की हाँभल मरतो अर क्यूं म्हे घर में घोड़ो घालता ।

बहू--हांमल भरी ही तो कांई नी दियो थाने, गहणो, गावो, सोफा, रेडियो, मशीन, घड़ी सो क्यूं दी बापडो घर ने गहणो मेल र थाने दहेज दियो पण थांको पेट नी भरयो, भरी बारात में सुसराजी म्हारे बाप री पगड़ी के ठोकर मार दी—बाईजी रो सुसरो भी थांको लैर अस्यी करतो जणा ठीक पड़ती।

सास—(लात मारते हुये) बड़ी आई है म्हाने ठीक पटकवाली, हरामजादी निकल ई घर सूं (घसीटते हुये) जी हांडी में खावे ऊंमे ही छेद करे (धक्का देते हुये) जा थारा बाबल्या के, टांग तोड़ न्हाकूंला म्हारा घर में पग धरयो तो बहू बेहोश होकर गिर पड़ती है मारते मारते सासू चली जाती है।)

बहू—(होश में आकर कराहते हुये स्वगत) बाप के अठे चली जाऊं ? क्यूं चली जाऊं ? ई घर में पारणी आई हूँ ती मर कर ही जाऊंली, कुल के दाग तो नी लागसी, बाप के जाऊ भी तो की मूंडा सूं जाऊं। व्याव हुया दो बरस कीत्या पीर रो मूडो ही नी देख्यां, माँ मरी जद भी नीं जावा दी अब जार बुढ़ापा में बाप ने क्यूं दुख दयूं—अब बयां कने रहयो ही कांई है सो क्यूं तो बेटी के ताई बेच दियो—आबरू तक भी, अठी ने पड़ू तो कुओ र अठी ने पड़ू तो खाई—है रामजी अस्यो जमारो कोई ने मत दीजे। धरकार है अस्यो जीतर, धरती माता तू ही हिवडे सू लगावेली इसी दुखियारी ने न पीर न सासरो (गले में रस्सी बांध कर मर जाती है)।

[कुछ लोगों का प्रवेश साथ में जसराज भी है]।

नागरिक पहला—राम राम आखिर बापड़ा ने मरणो ही पडयो।

नागरिक दूसरा—कसाई है कसाई।

जसराज—हैं ये क्या आत्म हत्या।

नागरिक पहला—आत्म हत्या नहीं 'हत्या' दहेज के राक्षस ने इस बिचारी की हत्या करदी है ये लाला करोड़ीमल की पुत्र वधू है जिसे इस जघन्य कर्म के लिये विवश होना पड़ा।

जसराज—अग्रसेन की सन्तान और इस तरह हत्या। आदमी से अधिक पैसे का मूल्य। हे दहेज तेरा सत्यानाश हो मनुष्यों को इज्जत वेचनी पड़े, मां

बहिनों को दुखी होकर मरना पड़े, कैसे कल्याण होगा इस समाज का (बही में लिखता है)।

झलकी दो—

(मंच पर दो ओर से दो दूल्हे-दुल्हन आते हैं एक अतिवृद्ध के साथ युवा पत्नी, दूसरे बालक और बालिका।)

नेपथ्य से—(सामूहिक नारी स्वर)

ये छोड़ बाबा सा रो हेत कोयल बाई सिद चाल्या।
ये आयो संगा रो सूक्टो,
ये लेग्यो टोली में सू टाल····कोयल बाई सिद चाल्या।

जसराज—(एक वृक्ष के नीचे बैठा-बैठा लिखते हुए चौंक कर) ये क्या तमाशा है ये विवाह है या गुड्डे-गुड़ियों का खेल, दूध मुंहे बच्चों का विवाह, नाड़ हिलाते वृद्धों का विवाह, चारों तरफ ढोल ढमाके (नोट करता हुआ चल देता है।)

झलकी तीन—

(बाल बिखेरे विधवा कन्या रो पीट रही है दो तीन महिलायें बैठी है।)

जसराज—(प्रवेश कर) हैं यह हृदय विदारक क्रंदन कैसा, इसे सुन कर तो छाती फटी जाती हैं (एक स्त्री से) बहिन क्या दुख है इसे।

स्त्री—इसका पति गुजर गया है बेचारी को फेरे खाये छै महीने भी नहीं हुये।

जसराज—राम राम बहुत बुरा हुआ, क्या बीमारी थी इसके पति को।

स्त्री—बीमारी क्या थी अस्सी बरस का डोकरा था, उसे तो जाना ही था पर इस बेचारी को रांड कर गया।

जसराज—(जनता से) ये हैं बालक बृद्धों के विवाह का परिणाम—कैसे कटेंगी इसकी उम्र (दो पंचों का प्रवेश)।

पच पहला—बेटी रोना धोना बंद करो, जाने वाला गया पर पीछे का काम तो करना ही है कितना धान चून है घर में।

विधवा—धान चून कठे बाजी—एक-एक गहणो तो व्यांकी बीमारी में बेच दियो अब तो रोट्यां रा भी सांसा है (आँचल से आंसू पोंछती है)

पंच दूसरा—होर न हो मर बाला रो मोसर तो करणों ही पडसी नुक्ता बिना मुक्ति कठे ।

विधवा—म्हारा हाड-क्या रहया है याने बेच र पंचा रो मूंडो मीठो करो और तो कांई करूं ।

पंच पहला—हाड क्या क्यूं बेंचा बेटी—अडौसी पडौसी लाय लागता फिर कदें आडाआसी यो मकान म्हारे नाँव कर अबार ले रूपिया पांच हजार ।

जसराज—हे भगवान ये पंच है या पिशाच—जिस समाज में मृत्यु भोज हो, उसे रसातल में भी स्थान नहीं मिल सकता, रक्षा करो प्रभो रक्षा करो—इन पापियों से जाति की रक्षा करो (लिखते लिखते प्रस्थान)

झलकी चार—

[एक ओर से एक पर्देवाली महिला आ रही है दूसरी ओर से दो गुण्डे]

गुंडा पहला—(मुंह से सीटी बजा कर) अरे वाह क्या परी जा रही है—जैसे राजा इन्दर के अखाड़े से उतरी हो ।

गुण्डा दूसरा—(एक टल्ला मार कर चलते हुये गाता है–) "एक तो सुन्दर मुखड़ा उस पर लाख अदायें हम अपने दिल को कहाँ ले जायें ।

[एक दिना पर्दे वाली साड़ी पहने स्त्री का प्रवेश गुन्डों को डाटते हुये]

बेपर्दावाली—नालायको ठहरो (चप्पल मार कर) शरीफ खानदान की बहू बेटियों को छेड़ते हुये तुम्हे लज्जा नहीं आती । (जसराज का प्रवेश) भाई साहब जरा इन्हें पकड़ना मैं पुलिस को फोन करती हूँ (जसराज उन्हें पकड़ता है) (महिला का प्रस्थान) ।

जसराज—बहिन क्या नाम है तुम्हारा (पर्दे वाली चुप रहती है) बोलो बोलो कहां जाना है तुम्हें (महिला चुप रहती है) (सिपाही के साथ बेपर्दे वाली का प्रवेश)

बेपर्दा स्त्री—ये ही वो गुण्डे हैं जमादारजी जिसने इस बेचारी को भरे बाजार में छेड़ा है ।

सिपाही—तुम्हारे पति का नाम क्या है । (महिला चुप) बयान दो अपना ।

बेपर्दा स्त्री—मैं पूछती हूं जमादारजी, क्यों जी तुम्हारे मरद का क्या नाम है ?

पर्देवाली स्त्री—(अपनी माला दे देती है) ।

बेपर्दा स्त्री—क्या मतलब—अच्छा शायद फूलों में कोई नाम है क्या चम्पालाल है ?

पर्देवाली स्त्री—टच ।

बेपर्दास्त्री—क्या गेंदालाल है ?

पर्देवाली—टच ।

बेपर्दास्त्री—क्या गुलाबचन्द है ?

पर्देवाली—(हाँ में गर्दन हिलाते हुये) पिच ।

जसराज—हे परमात्मा कैसे होगा उद्धार, जिस समाज में महाराणी माधवी जैसी देवियां हैं वहां ऐसी अनपढ, रूढ़िवादी और पर्देवाली अवलायें भी हैं जो आये दिन गुन्डों से सताई जाती हैं, पर्दे के कारण घुट-घुट कर तपेदिक का शिकार होती है, पिछड़ी रहती हैं (लिखता है)

सिपाही—आप सभी को मेरे साथ कोतवाली चलना होगा वहीं उनके बयान होंगे (गुन्डों के डन्डा मार कर) चलो बदमाशों । (सबका प्रस्थान)

झलकी पाँच—

[जसराज बाजार में जा रहे हैं, एक भिखारी आता है]

भिखारी—(गिड़गिड़ाकर) बाबू एक पैसा ।

जसराज—कौन हो भाई इस प्रकार भीख क्यों मांगते हो, कोई काम धन्धा देखो ।

भिखारी—काम (अट्हास) काम कहाँ मिलता है बाबू जी ।

जसराज—कहाँ तक पढ़े हो तुम ।

भिखारी—पढ़ा लिखा ही तो नहीं हूं भूखों मरते-मरते चोरी करने की नौबत आई परिणाम स्वरूप जेल जाना पड़ा, अब भीख मांगनी पड़ रही है पापी पेट जो न कराये थोड़ा है ।

जसराज—मेहनत मजदूरी क्यों नहीं करते ।

भिखारी—बनिये का बेटा मजदूरी करे ? हमारे कुल की यह रीति नहीं है बाबूजी ।

जसराज—चोरी करना, भीख मांगना मजदूरी करने से अच्छे हैं ? कैसे पिछड़े हुये विचार हैं तुम्हारे, अशिक्षा ही इसका मूल कारण है (पैसा देते हुये) जाओ मेहनत मजदूरी करो, पढ़ो लिखो (भिखारी पैसा लेकर चल देता है) जिस वंश की कुल देवी लक्ष्मी हो, जिस नगर का हर व्यक्ति अतिथि को एक ईंट और एक रुपया देकर अपने बराबर लक्षाधीश बना लेता था—उसी लक्ष्मी पुत्र की यह दशा-नहीं देखी जाती अब और अधिक नहीं देखी जाती, समाज की दुर्दशा, पतन की पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी है । जसराज चल शीघ्र चल, एक वर्ष समाप्त होने को आया महाराज प्रतीक्षा करते होंगे । (लिखते हुये प्रस्थान)

—: पटाक्षेप :—

—: तृतीय दृश्य :—

स्थान—बैकुण्ठलोक ।

समय—मध्यान्ह

[मंचसज्जा—महाराज अग्रसेन व महाराणी माधवी स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हैं चामर धारिणिये चवर ढुला रही हैं, दो छड़ीदार खड़े हैं तथा चार सरदार यथा स्थान सम्मुख बैठे हैं ।]

दो सरदार—(खड़े होकर) महाराज के जन्म दिवस पर हम अनेकानेक बधाई देते हैं । (माला पहिनाते हुये) ।

अन्य दो सरदार—(खड़े होकर) महाराज इस शुभ दिन पर हमारी मंगल कामना स्वीकार करें ।

[फूलों के गुल दस्ते चरणों में चढ़ाते हैं ।]

माधवी—(स्वर्ण मुद्राओं का थाल न्यौछावर करते हुये) सुलोचना ।

सुलोचना—जी महारानी जी ।

माधवी—(थाल देते हुये) स्वामी पर न्यौछावर की हुई ये एक लक्ष स्वर्ण मुद्रायें ब्राह्मणों को बाँट दी जाये ।

सुलोचना—जो आज्ञा देवी ! (थाल लेकर प्रस्थान)

अग्रसेन—आप लोगों ने जो स्नेह और सम्मान हमें दिया है उसके लिये हम हृदय से आभारी हैं और अनेकानेक धन्यवाद देते हैं ।

[सेवक का प्रवेश]

सेवक—स्वामी अप्सरा उर्वशी नृत्य के लिये द्वार पर उपस्थित है ।

अग्रसेन—उसे शीघ्र प्रस्तुत किया जाये ।

सेवक—(झुक कर जाते हुये) जो आज्ञा महाराज । (प्रस्थान)

अग्रसेन—अब अतिथियों के स्वागत में मनोरंजनार्थ नृत्य होगा कला की साधना के बिना हर आयोजन अधूरा है ।

सरदार—आपकी अनुकम्पा है देव, कला के प्रति आपका अनुराग अप्रशंसनीय है । (पुष्प उछलाते हुये नृत्यरत उर्वशी का प्रवेश)

[नृत्य समाप्त होने पर हाथ जोड़ कर त्रिभंगी मुद्रा में एक ओर खड़ी हो जाती है ।]

अग्रसेन—(कंठ से मोतियों का हार उतार कर देते हुये (धन्य उर्वशी धन्य क्या कहने हैं तुम्हारे नृत्य के, तुम स्वर्ग की शोभा हो ।)

उर्वशी—दासी निवेदन है देव (हार लेकर प्रणाम करते हुए प्रस्थान)

अग्रसेन—उत्सव के इस आयोजन में जसराज का अभाव कांटे की तरह खटकता है उसे गये एक वर्ष पूरा हुआ आज ही के दिन उसके वापस लौटने का निश्चित था ।

माधवी—वह सच्चा चारण है महाराज अपना वचन भूल नहीं सकता आता ही होगा, देखें क्या समाचार लाता है ।

अग्रसेन—(मुस्कराते हुये) मां अपनी सन्तान का हाल जानने को बहुत उत्सुक है ।

[विंग से उच्च स्वर में दोहा बोलते जसराज का प्रवेश]

जसराज—

कैसे अभिनन्दन करूं अग्रसेन महाराज ।
जन्म दिवस की भेंट में, दुख लाया जसराज ।।

अग्रसेन—(उठ कर गले लगाते हुये) वाह योगीराज वाह स्मरण करते ही उपस्थित ।

जसराज—(झुकते हुये) श्री चरणों में चारण का प्रणाम अर्पित है महाराज । (माधवी के चरण छूता है, माधवी माथा चूम कर आशीर्वाद देती है ।)

अग्रसेन—(सादर बैठाते हुये) बैठो जसराज कुशल से तो हो ।

जसराज—महाराज दास तो कुशल से ही है किन्तु.....

अग्रसेन—किन्तु ? किन्तु क्या जसराज ?

जसराज—किन्तु आपका समाज, आपकी प्यारी प्रजा, आज इस तरह दुखी है कि कुशल कहीं ढूंढ़ने से भी नहीं मिलती ।

माधवी—(चौंक कर) जसराज ।

अग्रसेन—तुम कह क्या रहे हो जसराज, परम प्रतापी राजा मांकील के वंशज दुखी हैं ? सूर्यवंशी अम्बरीश, वृन्द गुर्जर, नेमीनाथ, महीधर, बल्लभ सेन की सन्तान अन्धकार में हैं ? छत्रपति अग्रसेन के पुत्र पीड़ित हैं ? (व्याकुलता के साथ) जसराज शीघ्र कहो शीघ्र कहो, तुमने क्या देखा क्या सुना, तुम्हारा मौन हमारी बैचेनी बढ़ा रहा है ।

जसराज—महाराज मैं यहां से विदा होकर सीधा अग्रोहा पहुंचा—जिस बात की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती थी वही देख-सुनकर हृदय को अत्यन्त बेदना हुई, कवि की कलम रो पड़ी वही आंसू इस शुभ दिन पर आपको अर्पित कर रहा हूँ, शायद श्री चरणों के स्पर्श से ये मोती बन जायें ।

माधवी—कहो कवि कहो तुम्हारी लेखनी का आज नया जन्म हुआ है ।

जसराज—(उच्च स्वर से पत्रिका पढ़ता है)

महाराज लाज आती कहते, क्या कहूँ कण्ठ भर आता है ।
ये आँखों देखा हाल तुम्हें, जसराज आज बतलाता है ।।

कन्या का दान नहीं होता, होती बेटों की नीलामी ।
समधी की पाग उछलती है, होती दोनों की बदनामी ।।

दुख दिया बहू को जाता है, जो कम दहेज लापाती है ।
पीहर का द्वार न देख सके, फांसी खाकर मर जाती है ।।
घर जेवर इज्जत बेच विवश, शादी का कर्ज चुकाता है ।
ये आँखों देखा हाल तुम्हें, जसराज आज बतलाता है ।।

सरदार पहला—ओह जिस समाज में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जैसे देश भक्त हों उसमें सन्तानों का सौदा ? जिसमें सरशादीलाल सरीखे न्यायधीशों ने जन्म लिया उसमें बहू बेटियों द्वारा आत्म हत्या ? महाराज सुना आपने !

अग्रसेन—हमें इसका दुख है जसराज आगे कहो और क्या देखा तुमने ।

जसराज—

मुख में जिसके दो दांत नहीं, सिर का हर बाल सफेद हुआ ।
वह वृद्ध सातवां व्याह करे, यह देख मुझे अति खेद हुआ ।।
वर साठ साल, वधु आठ साल, दादा पोती से लगते हैं ।
फिर भी जो चुप रह जाते हैं, वे सोते हैं या जगते हैं ।।
मूँछे आने से पहिले ही बालक बनड़ी ले आता है ।
ये आंखों देखा हाल तुम्हें जसराज आज बतलाता है ।।

सरदार दूसरा—स्वामी ये शादी है या बरबादी, जो समाज सदा तलवार का धनी रहा है, इन्द्र और सिकन्दर पर विजय पा चुका है उसमें विलास का आज नग्न नृत्य ? राजा ललित प्रसाद, भारत रत्न भगवानदास के वंशजों का ऐसा पतन ।

अग्रसेन—पतन का पथ चिकना होता है सरदार, मनुष्य फिसला और फिसला, उसका संभलना कठिन होता है । जसराज क्या इससे भी अधिक बुरा कहने को कुछ शेष है ।

जसराज—हां महाराज—

घर घर में विधवा बैठी हैं, रो रोकर जन्म बिताती हैं ।
हल्दी के हाथ नहीं सूखे, देखे छाती फट जाती है ।।
उनको भी हाय समाज कहे, तुमको मोसर करना होगा ।
मरने वाले के साथ साथ, जीते जी यों मरना होगा ।।

खुद को रूखी रोटी न मिले, पंचों को माल जिमाता है।
ये आंखों देखा हाल तुम्हें जसराज आज बतलाता है॥

माधवी—(आँसू पोंछते हुये) बस करो चारण बस करो—वैधव्य नारी के लिये सबसे बड़ा अभिशाप है, धरती माता तू फट जा, आकाश तू टूट पड़। जिस जाति के गौरव को महारानी मालती, सति पद्मा जैसी पति परायणा देवियों ने पवित्र किया उसमें तरुण विधवायें ? मृत्यु भोज ? (रोती हैं)

अग्रसेन—धैर्य रखो महारानी, अभी न जाने और क्या क्या सुनना है कहो। कवि कहो ये पाषाण हृदय अग्र सब सहने में समर्थ है।

जसराज—

हा ! शेरों की बेटियाँ अभी घूंघट पर्दे में रहती हैं।
ससुराल बना बन्दीगृह सा, हो मौन सभी दुख सहती हैं॥
नाई, धोबी, चूड़ीवाले, रंगरेजों से बतियाती हैं।
पर जेठ, स्वसुर, सासू, उनसे मुंह फेर खड़ी हो जाती हैं॥
अस्मत को गुण्डे लूट रहे, घुट घुट कर क्षय हो जाता है।
ये आंखों देखा हाल तुम्हें, जसराज आज बतलाता है॥

सरदार तीसरा—बहू बेटियों की लाज गुन्डे लूटते हैं। पर्दे में घुट घुट कर रोगों का शिकार होता हैं ? हे विधाता ये सब क्या है ? बाबू प्राग नारायण से सुधारक, श्री प्रकाश से पत्रकार क्या समाज में उनका अभाव हो गया है—राजन ये सब कैसे हुआ।

अग्रसेन—यह समाज का दुर्भाग्य है उमराव–भाट आगे बोलो।

जसराज—

है घोर अशिक्षा अब तक भी, यों जाति चली रसातल में।
फंसते जाते हैं दिन पर दिन रूढ़ी कुरीति के दल दल में॥
ये लक्ष्मी पुत्र कहाते हैं जिनके खाने को नाज नहीं।
ये ऐसे राजा हैं जिनके माथे पर कोई ताज नहीं॥
अब कलम तराजू छूट रही, स्वामी सेवक कहलाता है।
ये आंखों देखा हाल तुम्हें, जसराज आज बतलाता है॥

सरदार चौथा—राजा की सन्तान चाकरी करती है। लक्ष्मी की सन्तान भीख मांगती है। हः हः हः (दुखद अट्टहास) भारतेन्दु से कवि, कंबरसेन से इंजीनियर का समाज अशिक्षित है, हः हः हः हः जो रत्नों के राजा काटन के किंग कहलाते हैं जहां जमनालाल बजाज, सर गंगाराम सी० आई०, राजा हरभजनसिंह, गूजरमल जी मोदी जैसे सेठ खड़े हैं उनके लिये अन्न की समस्या है। हः हः ह हः (आँसू पोंछता है)

अग्रसेन—रावजी आपकी हंसी का दर्द हम जानते हैं, विक्षिप्त होने से काम नहीं चलेगा, जाति के ये कलंक हमें धोने हैं, हमें कुछ करना है बोलो आप सब लोग इसके लिये तत्पर हैं।

चारों सरदार—(खड़े होकर) हम महाराज के चरणों की शपथ खाकर कहते हैं कि हमारे रक्त की एक एक बूंद समाज के कल्याण के लिये सहर्ष अर्पित है।

अग्रसेन—(गद् गद् होकर) धन्य हो सरदारों धन्य हो, आप लोगों से यही आशा थी अपने रक्त पर भला किसे विश्वास नहीं होता, तुमने अपने गौरव के अनुकूल ही यह प्रतिज्ञा की है।

जसराज—महाराज ये चार नहीं चार हजार हैं जिस जाति के सरदारों में ऐसा जोश जीवित है वह कभी मर नहीं सकती। उसका भविष्य उज्ज्वल है।

अग्रसेन—जसराज तुम ठीक कहते हो अभी बहुत कुछ किया जा सकता अतः प्यारे सरदारों आप लोग पुनर्जन्म लेकर समाज के अगुआ बनो विविध नामों से संस्थाओं का निर्माण कर जाति में सुधार का शंख फूंको।

सरदार पहला—आपका आदेश शिरोधार्य है महाराज, किन्तु हमें कुछ सुझाव तो दीजिये जिससे आगे बढ़ सकें।

अग्रसेन—समाज में परिवर्तन लाना होगा सरदार ! थोथे भाषणों और प्रस्तावों से काम नहीं चलेगा आप लोग ऐसे आदर्श उपस्थित करो कि लोग जिसका अनुसरण करें। हर व्यक्ति अपने आप में सुधार करे समाज स्वतः सुधर जायेगा।

सरदार दूसरा—जो आदर्श हमें प्रस्तुत करने हैं उन पर भी कुछ प्रकाश डालिये महाराज।

अग्रसेन—दहेज, बालक-वृद्धों के विवाह, मृत्यु भोज, पर्दा प्रथा और अशिक्षा ये पाँच पिशाच समाज के शत्रु हैं। इनको निकाल फेंकना होगा।

माधवी—और जो अल्प आयु में विधवा हो जाती हैं उसके लिये क्या उपाय सोचा है स्वामी।

अग्रसेन—बाल-विवाह और वृद्ध विवाह पर रोक लगाने से विधवाओं की सख्या अपने आप कम हो जायेगी प्रिये ! फिर भी दुर्भाग्य से जो किशोरियाँ निःसन्तान वैधव्य को प्राप्त हों, उनका पुर्नविवाह समाज द्वारा मान्य करना होगा।

जसराज—(आश्चर्य से) विधवा विवाह? महाराज इस कुल में अभी तक ऐसी प्रथा नहीं है, प्रश्न जरा गम्भीर है।

अग्रसेन—गम्भीर हमारी रूढ़वादी प्रवर्तियों ने बना दिया है जसराज समय और परिस्थितियों के साथ जो अपने विचार और सिद्धान्त नहीं बदलतें वे पिछड़ जातें हैं, यह क्रान्ति का कदम उठाना ही पड़ेगा।

सरदार तीसरा—क्षमा हो महाराज, कहतें हैं कि काठ की हांडी दुबारा नहीं चढ़ती उसी प्रकार नारी का विवाह भी केवल एक बार ही होता है।

अग्रसेन—(हंस कर) ये आप नहीं आपके संस्कार बोल रहे हैं नारी काठ की हाडी नहीं है सरदार ! पुरुष और नारी में इतना अन्तर है कि पुरुष वृद्धावस्था तक तीसरा चोथा विवाह कर सके और नारी तरुणावस्था में भी शान्ति पूर्वक और पवित्रता से जीवन बिताने के लिये एक सहारा भी न पा सके।

सरदार चौथा—अपराध क्षमा हो देव ! दहेज प्रथा और मृत्यु भोज तो सरकार तक ने अवैध घोषित कर दिये हैं फिर भी लोग नहीं मानते तो बेचारे समाज के पास इसका क्या उपाय है।

अग्रसेन—तुम्हारा प्रश्न उचित है सरदार यह समस्या बहुत अधिक कठिन नहीं है, कुछ पूंजी पतियों को छोड़ कर आज सभी सुधार करना चाहते हैं उनमें ऐसी भावना भरो जिसमें कोई व्यक्ति उन नियमों का उल्लंघन

करने की कल्पना भी न कर सके और ये तभी होगा जब समाज के नेता अपनी सेवाओं और सुलझे विचारों द्वारा हर व्यक्ति का विश्वास प्राप्त कर लेंगे—जब प्रत्येक अग्रवाल यह समझने लगेगा कि मेरी निन्दा दहेज देने व मृत्यु भोज करने से होगी न कि न करने से।

सरदार पहला—लेकिन पंच ये सब मानने को तैयार हो जब न।

अग्रसेन—यह प्रजातन्त्र का युग है सरदार अब कोई भी व्यक्ति वंशगत पंच नहीं रह सकता जो त्याग करेगा जो योग्य होगा वही पंच होगा। अपनी अन्ध परम्पराओं एवं स्वार्थान्धताओं के कारण ही तो पंच और पंचायतियों का महत्व आज समाप्त प्रायः सा हो चुका है।

सरदार दूसरा—तो सबसे पहले हमें समाज को एकता के सूत्र में पिरोना होगा।

अग्रसेन—आपका कथन निराधार नहीं है। ये तभी सम्भव होगा जब समाज की इतनी मान्यता हो जायगी कि उसके बिना अपना अस्तित्व रख सकने में व्यक्ति स्वयं को असमर्थ पायेगा।

सरदार तीसरा—और अपने निर्धन भाइयों को एक ईंट तथा एक रुपया देने की प्रथा पुनः प्रचालित करनी होगी।

अग्रसेन—यह समाजवाद की भावना का सरलतम रूप था सरदार, सोच सोच कर ऐसी कुछ सुन्दर प्रथायें समाज में प्रचलित करनी चाहिए जिससे परस्पर प्रेम व बन्धुत्व की भावना बड़ सके।

सरदार चौथा—(खड़े होकर) आपने हमारा मार्ग अत्यन्त सरल कर दिया है राजन ! अब हमें आज्ञा दीजिये।

अग्रसेन—मार्ग में बाधायें आयेंगी, सुधार होने में समय लगेगा पर धैर्य के साथ आप लोग आगे बढ़ते रहेंगे यह हमारा विश्वास है।

चारों सरदार—(झुक कर) आपका आशीर्वाद है देव।

जसराज—और सेवक को क्या आदेश है, क्या इस पुण्य कार्य से मैं वंचित ही रहूँगा।

अग्रसेन—नहीं जसराज, भला ये कैसे हो सकता है तुम्हें तो अभी बहुत कुछ करना है सोई हुई आत्माओं को जगाने वाला कवि ही तो होता है

आपके गीत जाति की काया पलट देंगे। यह अग्रवंश तुम्हारा चिर कृतज्ञ रहेगा।

जसराज—दास को स्वामी ने जो सुझाव दिया है वह शिरोधार्य है।

माधवी—जिस दिन आप लोगों के प्रयत्नों से समाज में सुधार हो जायेगा, मेरी सन्तान सुखी होगी, वही शुभ घड़ी होगी। ईश्वर वह सुप्रभात शीघ्र लाये, केवल जयंतियाँ और पर्व मनाना निरर्थक है यदि हम अपने पूर्वजों से कुछ नहीं सीख पाते, अपनी संस्कृति को अक्षुण्य नहीं करते, कुछ आगे नहीं बढ़ते।

[सेवक का प्रवेश]

सेवक—(प्रणाम कर) स्वामी आपके मित्र देवराज इन्द्र, स्वसुर नागराज, कुमुद, समधि दशानन वीशानन जन्म दिन की बधाई देने पधारे हैं।

अग्रसेन—उन्हें सादर अतिथि शाला में बैठाओ, हम आते हैं।

सेवक—(झुक कर प्रस्थान करते हुये) जो आज्ञा महाराज।

माधवी—तो अब चला जाये।

अग्रसेन—चलिये महारानी।

[सब लोग उठने का उपक्रम करते हैं]

जसराज—अग्रसेन महाराजा की।

चारों सरदार—जय।

जसराज—महाराणी माधवी की।

चारों सरदार—जय।

—: पटाक्षेप :—

घोषणा
आपतकालीन स्थिति की

समाचार पत्रों में प्रकाशित आज की एक सच्ची घटना को कल के ऐतिहासिक परिवेश में प्रस्तुत किया गया है।

आज की घटना :—

वधू का असमर्थ, भावुक पिता, बिना विवाहे द्वार से बारात वापिस लौट जाने की झूठी अप्रतिष्ठा से डर कर दहेज में कन्या का सर काट कर दे देता है।

इससे रोमांचकारी, शर्मनाक घटना, पतन की पराकाष्ठा और क्या होगी—यदि अब भी न चेते तो फिर कब चेतेंगे ?

कल का इतिहास :—

△ अखण्ड भारत सम्राट् विक्रमादित्य हेमचन्द्र (हेमू बक्काल) अग्रवाल थे।

△ उनकी वीर, सुयोग्या व सुन्दर पत्नी राधा, देश की प्रथम महिला मंत्री थी।

पात्र :—

हेमचन्द्र—भारत सम्राट् (१६ वीं शताब्दि)।
राधा—हेमचन्द्र की महारानी व प्रधान मंत्री।
महादण्ड नायक—प्रधान दण्ड रक्षक।
कोषाध्यक्ष—राज्यकोष का खजांची।
दुःखीराम—कन्या का निर्धन पिता।
धनीराम—वर का सम्पन्न पिता।
दूल्हा—धनीराम का पुत्र (वर)।
सभासद, अंगरक्षक, प्रहरी, सेवक, डुग्गी वाला आदि।

—: प्रथम दृश्य :—

[मंच सज्जा—भारत सम्राट विक्रमादित्य हेमचन्द्र का अन्तर्गत प्रकोष्ठ । वैभव सम्पन्न प्रसाधनों से कक्ष सुसज्जित है, एक ओर स्वर्ण पर्यंक—महाराज श्री का प्रवेश ।]

हेमचन्द्र—(इधर उधर देखकर) अरे ! कक्ष तो सूना पडा है । शायद महारानी किसी राज काज में व्यस्त हैं । एक तरफ गृह लक्ष्मी का दायित्व, दूसरी तरफ मंत्री पद का भार, अकेली अबला करे तो क्या करे ।

राधा—(पुरुष वेश में प्रवेश कर पगडी उतारते हुए) राधा कक्ष में महाराज का स्वागत है । प्राण नाथ को प्रतीक्षा करनी पडी इसके लिए क्षमा चाहता हूं ।

हेमचन्द्र—(अट्टहास कर) क्षमा चाहता हूं ? हा ! हा !! हा !!! राधे तुम अभी तक राधेश्याम ही बनी हुई हो तुम्हारे सलौने मुख से यह पुरुषोचित भाषा बहुत ही मीठी लगती है ।

राधा—(लजाकर) वर्षों पुरुष वेश में रहते रहते आती हूं, जाती हू के स्थान पर आता हूं, जाता हूं, बोलने की आदत सी पड़ गई है महाराज ! चूक हो ही जाती है । (तलवार कोट आदि खोलती है ।)

हेमचन्द्र—यह ठीक है राधे कि तुम्हारी योग्यता देखकर हमने व देश की जनता ने तुम्हे इस अखण्ड भारत का प्रथम महिला मंत्री चुना । प्रधानामात्य के रूप में तुम्हारी सेवाएं सराहनीय है—किन्तु···· ।

राधा—(केश फैलाकर समीप आती हुई) किन्तु क्या महाराज ?

हेमचन्द्र—(बाल सहलाते हुए) किन्तु राजमहल में हम तुम्हे राधेश्याम के रूप में नहीं, राधा के रूप में देखना चाहते हैं—मंत्री के वेश में नहीं महारानी के वेश में ।

राधा—पुरुष तो मुझे केवल आपके कारण बनना पड़ा था स्वामी—ढीली ढाली साड़ी या लंहगा लुगडी पहिन कर क्या दश्यूराज भानु से लडा जा सकता था—इतने युद्धों से जूझा जा सकता था ? नारी की विवशता ही उसे पुरुष बनने के लिए बाध्य करती है ।

हेमचन्द्र—पर देवी जी अब तो सब जनता पर यह भेद प्रकट हो चुका है कि हेमू का साथी राधेश्याम नहीं उनकी महारानी राधिका है । शहनशाह हिन्द मोहम्मद आदिल ने सारी प्रजा के समक्ष हमारा विवाह संस्कार स्वयं अपने हाथों से कराया था—अब इस झझट की क्या आवश्यकता है ?

राधा—निश्चय ही अब पुरुष वेश की आवश्यकता नहीं रही किन्तु मुझे पुरुषोचित कठोरता अभी रखनी ही पड़ेगी ।

हेमचन्द्र—हम जानते हैं कि तुम्हारी वह कठोरता कृत्रिम है, कर्तव्यों के कारण है किन्तु जो सुख नारी की कोमलता में है वह अन्यत्र कहाँ ? प्रशासक बन कर आदेश देने की अपेक्षा माँ बनकर प्रजा पर वात्सल्य छिड़के ।

राधा—मैंने हमेशा अपने आपको प्रजा की माँ ही समझा है देव ! किन्तु समय आने पर माँ को कठोर बनना ही पड़ता है—क्योंकि वह सन्तान की शुभ चिंतक होती है—उन्हें सुधारणा चाहती है ।

हेमचन्द्र—तुम्हारे तर्क अकाट्य हैं भगवती ! फिर आज तो तुम विशेष ही उग्र हो—क्या हम इसका कारण जान सकते हैं ?

राधा—महाराज ! आप तो शत्रुओं से घिरे देश की सुरक्षा में इतने लीन हैं कि समाज में क्या हो रहा है उसे बिसरा बैठे हैं । क्षमा करें आर्य आप यह भूलते हैं कि विभिन्न समाज ही राष्ट्र के अंग प्रत्यंग होते हैं—बाहर से पहले घर को सभालना आवश्यक है ।

हेमचन्द्र—देवी का संकेत किस समाज की तरफ है ।

राधा—दीये तले अंधेरा महाराज ! हमारा अग्रवाल समाज ही आज पतन के गर्त में गिरता जा रहा है ।

हेमचन्द्र—(आश्चर्य से) अग्रवाल समाज और पतन के गर्त में ? राधा यह समाज धन, बल, बुद्धि का भण्डार है, सब प्रकार से सक्षम है—महामाया लक्ष्मी के पुत्र पतन के पथ पर कैसे चल सकते हैं ?

राधा—लक्ष्मी पुत्र जब लक्ष्मी पति हो जाते हैं तो उनकी मति भृष्ट हो जाती है महाराज ! आज आश्विन शुक्ला एकम है, अग्रोहा में अग्रसेन जयंती समारोह की अध्यक्षता करने मुझे आमंत्रित किया गया था, वहाँ एक ऐसी हृदय विदारक घटना समाने आई कि रोम-रोम सिहर उठा—लाख संभालने

पर भी मेरा मन संतुलित नहीं हो पाया है। (आँचल से आँसू पोंछते हुये।)

हमचन्द्र—(समीप जाकर स्नेह से) इतनी उद्विग्नता। इतनी व्यथा। ऐसा क्या अघट घर गया है जिसने महादेवी के अन्तर को झकझोर डाला है।

राधा—(सुबकते हुए) जब मैं महाराज श्री अग्रसेन जी की प्रतिमा के समक्ष श्रद्धा सुमन समर्पित कर रही थी तभी अग्रोहा नगर दण्डनायक कुछ व्यक्तियों को बन्दी बनाकर लाया।

हेमचन्द्र—उत्सव के उस आयोजन में किसी को बन्दी बनाकर लाना दण्डनायक की सरासर भूल है उन्हें उचित अवसर पर ही महामंत्री की सेवा में उपस्थित होना चाहिए था।

राधा—भूल दण्ड नायक की नहीं परिस्थिति की है देव! विषम घटनाएं उचित अवसर की प्रतीक्षा नहीं किया करती।

हेमचन्द्र—इतने बड़े राज्य में घटनाए, तो घटती ही रहती हैं—इसका यह अर्थ नहीं है कि वे जयंन्ती समारोह में विघ्न उपस्थित करें। अग्रसमाज पर इसका क्या प्रभाव पड़ा होगा।

राधा—शायद प्रभाव पड़ने के लिए ही दण्ड नायक ने उन्हें भरी भीड़ में प्रस्तुत किया था। यदि इस लज्जास्पद घटना से समाज पर कुछ भी प्रभाव पड़ा, तो यह समारोह, यह बलिदान दोनों ही सार्थक हो जाएगें।

हेमचन्द्र—(चौंकते हुए) बलिदान? किसका बलिदान? कैसा बलिदान?

राधा—बलिदान एक नव वधू का, एक अधखिली कली का, जिसके हाथों की मेंहदी नहीं सूखी, जिसकी माँग का सिन्दूर डिबिया में सिसकता रहा जिसके सुख सपनों की सेज खिलने से पहले ही मुर्झा गई। (फफकती है)

हेमचन्द्र—(राधा की पीठ सहलाते हुए) राधिके! यह घटना पत्थर से पत्थर को भी पिघला देगी, फिर नारी हृदय तो करुणा और ममता की प्रति मूर्ति होता है—भावुकता उसकी निधि है, हम महारानी की मनः स्थिति को समझ रहे हैं।

राधा—(अश्रु पोंछते हुए) सुनने और देखने में बड़ा अन्तर है महाराज! कल दरबार में जब आप घटना का प्रत्यक्ष रूप देखेंगे तो आपकी भी आँखें भीगे बिना नहीं रहेंगी।

हेमचन्द्र—अर्थात महामन्त्री उस घटना का वर्णन सुनाना नहीं चाहते।

राधा—(मुस्कराकर) महामंत्री तो सुना सकता है पर महारानी नहीं सुना सकती, सुनकर आप चैन से सो नहीं सकेंगे।

हेमचन्द्र—उत्सुकता जगाकर उसे तड़फने के लिये छोड़ देना, भावनाओं से खिलवाड़ करने की तुम्हारी पुरानी आदत अभी छूटी नहीं है।

राधा—(शायराना अन्दाज से)

वह आदत क्या जो छूट जाय।
वह बन्धन क्या जो टूट जाए॥

हेमचन्द्र—ठीक है, तो अब यही देखना है कि तुम्हारी आदत छूटती है या हमारा बंधन। (हँस कर दिया बुझा कर रानी की तरफ बढ़ना।)

—: पटाक्षेप :—

—: द्वितीय दृश्य :—

[मंच सज्जा—भारत सम्राट् हेमू बक्काल का राज दरबार। दण्ड नायक, कोषाध्यक्ष, सभासद सभी उपयुक्त वेशभूषा में बैठे हैं। चामर धर छत्र धर, दण्ड धर यथा स्थान खड़े हैं।] (प्रहरी उच्च स्वर में घोषित करता है)

प्रहरी—सब समासद सावधान! अग्रवंशोत्पन्न, भारत सम्राट्, विक्रमादित्य, छत्रपति हेमचन्द्र पधार रहे हैं.....

[सब खड़े होकर महाराज की जय जयकार करते हैं—राजसी गरिमा से आकर हेमचन्द्र मध्य में स्थित उच्च सिंहासन पर विराज जाते हैं। पार्श्व में ही नारी वेश में मूल्यवान वस्त्रालंकार धारण किए प्रधान मंत्री के पद पर राधा सुशोभित है।]

राधा—(खड़े होकर) महाराज और समासदों—जीवन में कभी-कभी कोई ऐसी घटना घट जाती है कि व्यक्ति को उद्विग्न और विद्रोही बना देती है (सब चौंकते हैं) लाख चाहकर भी मैं आज न तो आप लोगों को उचित सम्बोधन ही दे सकी और न ही भाट बन्दियों को विरदगान की अनुमति। इस दरबारी परम्परा को तोड़ने की क्षमा चाहते हुए मैं महादण्ड नायक को आज्ञा देती हूँ कि वह न्याय के लिए अपराधियों को सप्रमाण प्रस्तुत करें।

[महादण्ड नायक ताली बजाते हैं—दो शस्त्रधारी सेवक एक प्रौढ़ मारवाड़ी, एक अधेड़ टोपी धारी व दूल्हे की वेश भूषा में एक युवा को बनाए हुए प्रस्तुत होते हैं। एक अन्य सेवक के हाथ में आवरण युक्त एक थाल है जिसमें दुलहिन का कटा हुआ सिर अवगुण्ठित है। हण्डिया आदि द्वारा या प्लास्टर पेरिस के खिलौने से कटा सिर बनाया जा सकता है।]

महादण्ड नायक—(नतमस्तक होकर सेठ की तरफ इंगित करते हुए) देव ! यह प्रौढ़ व्यक्ति सेठ धनीराम के नाम से जाना जाता है। सर्राफी हो या ब्याज भाड़ा जैसे भी हो धन बटोरना ही इसके जीवन का लक्ष्य है।

राधा—धन बटोरना और वह भी निकृष्ट कामों में।

हेमचन्द्र—(गम्भीरता से) हूँ।

महादण्ड नायक—(दूल्हे की तरफ संकेत कर) यह युवा पुरुष जो वर की वेश भूषा में खड़ा है इसका आवारा और लोभी पुत्र है।

राधा—करेला कड़ुआ और नीम चढ़ा।

महादण्ड नायक—(टोपी धारी की तरफ संकेत कर) श्रीमन ! वे जो गर्दन झुकाए अधेड़ से सज्जन खड़े हैं इनका नाम दुःखीराम है आप एक विद्यालय में शिक्षक है। विद्वत्ता, ईमानदारी और सद्व्यवहार के कारण समाज में इनकी काफी प्रतिष्ठा है।

राधा—गरीब बेटी का बाप, भोला और भावुक।

हेमचन्द्र—अर्थात नदी के दो किनारे, आश्चर्य तो ये है कि दो असमान स्थिति वालों में सम्बन्ध सम्भव कैसे हुआ ?

दुःखीराम—(कातर स्वर मे) दुःखीराम के दुर्भाग्य से अन्नदाता इधर कन्या की उम्र बढ़ रही थी, उधर मेरी निर्धनता बहुत प्रयत्न करने पर भी रिश्ता बैठ नहीं रहा था। लोग सहानुभूति दिखाते थे, आदर्श की बातें करते थे, लेकिन विवाह का प्रस्ताव रखते ही पहला प्रश्न यही पूछते, कि दहेज कितना दोगे ? कितना रुपया लगाओगे ?

राधा—शादी, शादी नहीं रही सौदा हो गई, स्नेह का स्थान सोने ने ले लिया, समाज की वणिक वृत्ति कन्या के रूप गुण नहीं देखती, पिता की तिजोरी देखती है।

हेमचन्द्र—यह अमानुषिक है—नाते-रिश्ते की पवित्रता पर दाग हैं।

कोषाध्यक्ष—क्षमा हो महाराज आज रिश्ते लड़के-लड़की के नहीं पैसे से पैसे का है। जो पहले से ही धन के समुद्र हैं उन्हें दहेज और कुरीतियों की विविध नदियां रात दिन और अधिक भर रहीं हैं।

राधा—इस दूषित मनोवृत्ति से जहाँ अनमेल विवाह हो रहे हैं वहाँ समाज का आर्थिक ढाँचा दिन पर दिन बिगड़ता जा रहा है—निर्धन अधिक निर्धन और धनी अधिक धनी होते जा रहे हैं यह महाराज श्री अग्रसेन जी के समाजवाद की सरासर हत्या है।

हेमचन्द्र—समाजवाद अमीर-अमीर और गरीब-गरीब के रिश्तों से नहीं आ सकता, यह तो अमीरी-गरीबी के गठबन्धन से ही सम्भव है। धनी कन्याओं के पिता स्वस्थ, सुन्दर और सुयोग्य गरीब वर की तलाश करें—अपनी इच्छा से उन्हे सामर्थ्यानुकुल सहायता दें तभी समाज सन्तुलित होकर निश्चित रूप से ही सुखी होगा।

दुःखीराम—अन्नदाता ! इस दुष्ट धनीराम ने मुझे यही सब कुछ कहा था जो आप भी श्रीमुख से फरमा रहे हैं—इन्हीं मीठी-मीठी बातों ने मुझ गरीब को अपने जाल में फँसा लिया।

हेमचन्द्र—जाल ? कैसा जाल ?

महादण्ड नायक—महाराज संक्षेप में कहानी ये है कि गरीबी के कारण जहाँ इनकी कन्या को वर नहीं मिल रहा था वहाँ धनीराम के पुत्र की अवारा गर्दी के कारण उसे वधू नहीं मिल रही थी इस प्रकार दोनों की आवश्यकताओं ने दोनों को मिलाया-साथ ही धनीराम का पुत्र दुखीराम की लड़की की सुन्दरता पर भी मुग्ध था—इसलिए उसने अपने पिता को इस विवाह के लिये विवश किया।

हेमचन्द्र—हमारे विचार से तो यह ठीक ही हुआ—इसमें दोनों की ही जरूरते पूरी हो रही थी, सच पूछा जाए तो समझौतों का नाम ही समाज है।

दुःखीराम—गड़बड़ ये हुई महाराज कि इस धनीराम ने तो अपनी आवश्यकता की पूर्ति करली—अयोग्य पुत्र के लिए चाँद सी बहू लाने का रास्ता निकाल लिया—मैंने भी सोचा कि लड़का जरा यों ही है पर लड़की लखपति घर में चली जाएगी तो बैठी राज करेगी पर·····

हेमचन्द्र—पर क्या ?

दुःखीराम—पर जब ये बारात लेकर मेरे दरवाजे पर आए तो मैंने सोचा कि जब इन्होंने किसी तरह की माँग नहीं रखी है तो अपनी सामर्थ्य शक्ति से बाहर इनका आतिथ्य करूँ—मैंने ऋण लिया, पत्नी के आभूषण बेचे, इन्हें सब कुछ दिया पर इनका पेट नहीं भरा।

हेमचन्द्र—क्या किया इस मूंजी ने ?

दुःखीराम—इस बदनियत ने सोचा कि कोई खानदानी आदमी यह बर्दाश्त नहीं करेगा कि बारात उसके दरवाजे से बिना विवाह लौट जाए ?

कोषाध्यक्ष—(आश्चर्य से) तो क्या यह बारात वापस लौटा लाए ?

दुःखीराम—लौटा नहीं लाए, लौटा लाने की धमकी दी, जब लग्न-मण्डप में फेरे पड़ने का समय हुआ तो लड़का टस से मस नहीं हुआ—बोला मुझ अलग धन्धा करने के लिए इक्कीस हजार रुपये नकद चाहिए।

हेमचन्द्र—इक्कीस हजार ?

दुःखीराम—हाँ सरकार यह संपोला तो इस साँप का पढ़ाया हुआ था (धनीराम की तरफ संकेत कर) असली खुराफात की जड़ तो धनीराम ही था—यह बदजात अकड़कर बोला "मेरे लड़के की माँग पूरी नहीं की गई तो मैं बिना शादी के बारात लौटा ले जाऊँगा।"

राधा—यह कमीना सब कुछ कर सकता था आर्य ! लोभ ने जिसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी हो उसे दूसरे के आँसू और प्रतिष्ठा कैसे दिखती।

दुःखीराम—महाराज ! मैंने अपनी टोपी उतारकर इसके पाँवों में रखी, इसे लाख हाथा जोड़ी की पर यह पत्थर नहीं पसीजा। टोपी ठुकराकर बोला "मुझे पता नहीं था कि ऐसे कंगलों के बारात लेकर जा रहा हूं जो अपने दामाद की इतनी छोटी सी इच्छा भी पूरी नहीं कर सकते।"

हेमचन्द्र—दुःखीराम कन्यादान सब दानों से बड़ा है। दान देने वाला कभी छोटा नहीं होता। लेने वाले का हाथ नीचे, देने वाले का ऊपर। तुम्हारी गलती यही थी कि तुमने इस पामर के पाँवों में टोपी रखी—इन दोनों नीच नारकीयों को धक्के मार मारकर मण्डप से बाहर निकाल देना चाहिए था—इससे दूसरे दहेज खोरों की भी आँखें खुलती।

दुःखीराम—गरीब नवाज बेटी का बाप बहुत अकिंचन और दैयनीय होता है—मेरी मन्द बुद्धि ने सोचा कि यदि बारात लौट गई तो बाप दादों

की मर्यादा मिट्टी में मिल जाएगी, गाँव गली के लोग मेरे माजने में थूकेगें और····और सबसे अधिक डर यह था कि मैं अपनी फूल जैसी बच्ची को क्या मुँह दिखाऊँगा उसका दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।

हमचन्द्र—तो फिर आपने दहेज दिया, या ये बारात वापस ले गया।

राधा—इन्होने दहेज दिया (व्यंगात्मक हास्य) वो देखिएं वो रहा दहेज (राधा थाल की तरफ संकेत करती है सेवक आवरण हटा देता है—कटा सर देखकर दरबार में खलबली)।

हेमचन्द्र—(एक दम चौंककर) दहेज ! कटा हुआ सर दहेज ! (आवेश से) किसने काटा इस तेल चढ़ी कन्या का सर ?

दुःखीराम—(विलखते हुए) मैंने माँई बाप मैंने। (हाथ दिखाकर) अपने जिन हाथों से मैंने उसे खिलाया उन्हीं से उसका सर उतार लिया (हाथ दीवार से मारते हुए पैशाचिक अट्टहास) दहेज हः हः हः हः दहेज (विक्षिप्त सा बाल नोचता है)।

महादण्ड नायक—देव ! इस बेचारे ने धनीराम को यहाँ तक कहा कि समधी जी अभी तो जैसे भी हो आप विवाह हो जाने दें—मैं इक्कीस हजार रुपए की चिट्ठी लिखकर देने को तैयार हूँ—धीरे-धीरे ब्याज सहित चुका दूँगा—अभी है ही नहीं तो दूँ कहाँ से, पर इस पिशाच ने लड़के को हाथ पकड़ कर उठा लिया, बारात भी उठने लगी तो दुःखीराम बोला "धनीराम जी ठहरों—मैं लाता हूँ आपके लिए दहेज।"

राधा—अंधा क्या चाहे दो आँखें, धनीराम प्रसन्न होकर मूँछों पर ताव देते मण्डप में बैठ गऐ और दुःखीराम ? भावुक दुःखीराम ने भीतर जाकर कुल्हाड़ी के एक ही बार से उस कन्या का सर काट डाला जो विवाह मंडप में आने के लिएं सोलह शृंगार किए तैयार बैठी थी (शहनाई के स्वर रुदन में बदल गए।)

हेमचन्द्र—उफ ! कैसी हृदय विदारक घटना है, इन लालची कुत्तों के पाप की सज़ा एक निरपराध कली को मिली सारे समाज के मूँह पर कलंक लगा।

राधा—महाराज तब भी तो समाज की आँखें नहीं खुलती दहेज की बलिवेदी पर आज दुःखीराम की कन्या का बलिदान हुआ है—कल न जाने किस-किस का और होगा—पतन की पराकाष्ठा हो गई है।

हेमचन्द्र—हमें इस पतन को रोकना होगा महामन्त्री ! पहले जरा इन अपराधियों को देख लूँ (धनीराम की तरफ देखकर) क्यों धनीराम तुम पर जो आरोप लगाए गए हैं ठीक हैं ?

धनीराम—अन्नदाता ! बात का बतंगड़ बना दिया गया है समाज में आज ऐसा कौन है जो अपने पुत्र के विवाह में माँग ठहराव नहीं करता—मैंने कोई चोरी डाका नहीं डाला—मैंने इसे यह नहीं कहा था कि तू अपनी लड़की का सर काट लाना। खूनी दुःखीराम है धनीराम नहीं।

हेमचन्द्र—(आवेश से) धनीराम खूनी तुम हो तुम ! इस बेचारे के तो एक तरफ कूआ और एक तरफ खाई थी वह विवशता तुम्हारी लोभ वृत्ति ने उत्पन्न की जिसके कारण यह हत्या हुई।

धनीराम—रुपए मैंने नहीं, मेरे बेटे ने माँगे थे—मैंने तो बगैर किसी शर्त के ही विवाह सम्बन्ध किया था।

दूल्हा—(धनीराम को संकेत कर) रुपए मैंने आपके कहने से माँगे थे पिताजी ! वरना मुझे तो यह लड़की इतनी पसन्द थी की रुपया लेना तो क्या देना भी पड़ता तो मैं ना नहीं करता।

हेमचन्द्र—(हँसकर) खूब ! खूब !! स्वार्थी बाप बेटे को दोषी ठहरा रहा है, बेटा बाप को। बेटे ने सुन्दरता चाही बाप ने दौलत। अपनी चालाकी से दोनों ही प्राप्त करने का रास्ता निकाल लिया। जालसाजी का शिकार बना दुःखीराम और उसकी कन्या। (जोर से) दण्ड नायक जी।

महादण्ड नायक—(सर घुमाकर) आज्ञा श्रीमान !

हेमचन्द्र—इस धूर्त दूल्हे का सर मुंडाकर काला मुँह किया जाए, धूर्त राज धनीराम के नाक-कान काटे जाएँ—दोनों को ही गधे पर बैठाकर पूरे नगर में घुमाया जाए—यह घोषण करवादी जाए कि इन दहेज दानवों का सामाजिक बहिष्कार किया जाता है—अग्रवाल ही नहीं अग्रोहा का कोई भी नागरिक इससे अपनी कन्या का विवाह नहीं करेगा।

धनीराम—(गिड़गिड़ाकर) क्षमा ! अन्नदाता क्षमा !!

हेमचन्द्र—(गर्जकर) क्षमा और तुझ जैसे कसाई को ? (कोषाध्यक्ष की तरफ देखकर) कोषाध्यक्ष जी इस नालायक की सारी पूँजी जब्त करली जाए

आधे धन से इस होने वाली वधू की स्मृति में एक सुन्दर सी समाधि बना दी जाए और आधा धन दुःखीराम को दे दिया जाए।

दुःखीराम—नहीं महाराज नहीं !! मुझ अधम को अपनी पुत्री के रक्त से रंगे रुपए नहीं चाहिए।

हेमचन्द्र—यह रुपया तुम्हारे लिए नहीं तुम्हारी सन्तान के पालन पोषण के लिए है।

महादण्ड नायक—क्षमा हो देव ! चाहे किसी भी कारण हो पर दुःखीराम ने एक हत्या की है—कानून को अपने हाथ में लिया है—थोथी भावुकता से संसार नहीं चलता।

हेमचन्द्र—(हंसकर) कानून की दृष्टि से आपका कथन सर्वथा ठीक है महादण्ड नायक ! यह सच है कि कानून अंधा बहरा होता है। लेकिन न्याय ? न्याय परिस्थिति और आदमियत पर आधारित है। सर काटते समय दुःखीराम विक्षिप्त और उत्तेजित थे—अपने होश हवाश में नहीं थे। फिर भी हम यह मानते हैं किसी भी आदमी के लिए यह उचित नहीं है कि वह दुख पड़ने पर औसान भूलकर इस प्रकार अनधिकार चेष्ठा करें।

राधा—मेरे बिचार से दुखीराम जी के लिए यह उचित सजा होगी कि वे पाँच वर्ष तक राज्य में पैदल पर्यटन करें। इनके गले में 'पुत्री का हत्यारा' लिखकर एक तख्ती लटका दी जाए जिससे जगह-जगह लोग इनसे पूछें कि इन्होंने अपनी कन्या की हत्या क्यों की—हर व्यक्ति, समाज या सभा सम्मेलनों में ये जाए और अपनी करुण कथा सुनाए।

हेमचन्द्र—इससे जहाँ इनका प्रायश्चित होगा, वहाँ दहेज लेने देने वालें को शिक्षा मिलेगी यह वास्तविक समाज सेवा होगी, उस मृत आत्मा को भी इससे सन्तोष होगा कि उसका बलिदान व्यर्थ नहीं गया।

राधा—दुखीराम जी की पुत्री सति बसुन्धरा की समाधि बनाने की आज्ञा तो महाराज ने दे ही दी है पर मैं पूरे दहेज की ही समाधि बना देना चाहती हूँ।

हेमचन्द्र—(आश्चर्य से) दहेज की समाधि ?

राधा—हाँ स्वामी जिससे इस प्रकार की दुःखद और शर्मनाक घटनाओं

की पुनरावृत्ति न हो। बिना सख्ती के काम नहीं चलेगा मैंने रात्री में ही एक योजना बनाली है जिससे दहेज का समूल नाश हो जाएगा।

हेमचन्द्र—(प्रसन्न होकर) क्या है वह योजना ?

राधा—अभी दरबार बरख्वाश्त किया जाए—भोजनोपरान्त बैठकर हम सारे सूत्रों पर विचार विमर्श कर आम जनता में घोषित करवा दिए जाएँगे।

हेमचन्द्र—ठीक है दरबार बरख्वाश्त किया जाए।

महादण्ड नायक—(उच्च स्वर में) महाराज हेमचन्द्र की।

सब सभासद—जय।

—: पटाक्षेप :—

—:तृतीय दृश्य :—

स्थान—अग्रोहे का प्रमुख राज मार्ग।

[मंच सज्जा—राजकीय कर्मचारी की वेश भूषा में एक डुग्गी पीटने वाला चोराहे पर खड़ा होकर बुलन्द आवाज में ऐलान कर रहा है—आस पास स्त्री, पुरुष बच्चों का जमघट है।

चाहे तो ढिंढोरा पीटने वाले के दोनों तरफ दो गधों पर सवार काला मुँह किए धनीराम व उसके बेटे को जूते के हार पिरहाए दिखाया जा सकता है—औरतें उन पर धूल फेंक रही है। बच्चे चिड़ा रहे है—युवक आवाजें कस रहे हैं "देखो देखो दूल्हा गधे पर, और बेटे को बेचो सेठ जी" आदि—]

डुग्गी वाला—(जोर से डुग्गी बजाकर) जगत जगद्‌धार, जगदीश्वर का, राज्य परम पराक्रमी विक्रमादित्य हेमचन्द्र बक्काल का, आदेश प्रधान मन्त्री देवी राधा का—अग्रोहा के हर आम खास को सूचित किया जाता है कि आज से सारे देश में अनिश्चित काल के लिए आपतकालीन स्थिति घोषित की जाती है—सभी सामाजिक रीति रिवाजों के लिए कुछ योजनाएँ बना दी गई है, किसी ने उसका उल्लंघन किया, दहेज लिया या दिया, मृत्यु भोज किया या किसी प्रकार की कुरीति फैलाई तो उसे सख्त से सख्त सजा दी जायेगी। (डुग्गी बजाते हुए प्रस्थान। आगे दूर से पुनः वही स्वर सुनाई देना)

—: पटाक्षेप :—

झेलम का पानी

राज्य कवि शाह कन्हैयालाल पोद्दार ने अग्रसेन सम्बन्धी रचना में लिखा है :—

"सिकन्दर शाह बड़ा बलवान, लड़ाई करने की ली ठान।
भिड़ गये अग्रवाल सरदार, हाथ में ले दो दो तलवार॥

सिकन्दर और अग्रसेन के युद्ध की बात काल भेद के कारण बहुत कम विश्वसनीय है। जनश्रुति हैं कि अग्रसेन ने सिकन्दर को सत्रहवार हराया, दूसरी जन-श्रुति कहती है कि वीरता से लड़ते हुए अग्रोहावासी यूनानियों की बड़ी भारी सेना से परास्त हुए और स्वय ने ही अपने नगर को जला डाला, बच्चों को मार डाला और सैकड़ों स्त्रियाँ अग्नि में स्वाह हो गई।

पोद्दार जी लिखते हैं—**"हुई सोलह सौ सतियाँ नार।"**

डा० बॉनेट की पुस्तक "इन्वेजन ऑफ इण्डिया बाई एलेक्जेण्डर दी ग्रेट"; यूनानी इतिहासकार डायोडीरस तथा विवन्तिये कार्तिये सबके कथन में कुछ साम्य, कुछ भिन्नताए हैं।

इन सब विवादों में न पड़कर मैंने इससे निसृत सार ग्रहण किया कि यूनान तथा पजाब के सम्बन्ध कटु थे और पुरु, अग्रसेन आदि अनेक महा-राजाओं से उनके पीढी दर पीढी युद्ध चलते रहे—मेरे समक्ष हार जीत का नहीं अग्रबन्धुओं की वीरता, साहस व शौर्य का था, उनकी राष्ट्रीय भावना का था। अतः इतिहासकारों के आक्षेप से बचने के लिए मैंने अलक्षेन्द्र न लिखकर यूनानाधीश शब्द का प्रयोग किया है। मतलब आम खाने से न कि पेड़ गिनने से।

पात्र :—

अग्रसेन—अग्रोहा के छत्रपति सम्राट।
कमलसेन—महाराज का गुप्तचर।
जसराज—अग्रसेन का भाणेज जो योगी होकर चारण हो गया।
माधवी—अग्रसेन की पटरानी—नागराज कुमुद की कन्या।
मोहिनी—माधवी की सखी।
यूनानाधीश—यूनान का तत्कालीन बादशाह।
सेनापति—यूनानाधीश का सेनाध्यक्ष।
सिपाही, सेवक, योद्धागण आदि।

—: प्रथम दृश्य :—

समय—मध्यान्ह **स्थान**—महाराजा अग्रसेनजी का रनिवास

[मंच सज्जा—मसनद के सहारे मखमल के गलीचे पर बैठे हुए महाराज व महारानी। सामने चांदी की चौकी पर सलमें की चौसर व सोने के पासे रखे हैं। दो सेविकाऐं मोरछल से पखा झल रही हैं।]

अग्रसेन—आओ महारानी! आज तो एक दो बाजी चौसर की हो जायें।

माधवी—जो आज्ञा महाराज, परन्तु ..

अग्रसेन—परन्तु क्या देवी?

माधवी—एक शर्त रहेगी।

अग्रसेन—(हंसकर) शर्त? वो क्या?

माधवी—वो यह कि हराने वाले को एक बात माननी पड़ेगी।

अग्रसेन—हमें स्वीकार है।

माधवी—(पासा फैंकते हुए) तो संभालिये महाराज, यह आपकी गोट पिटी।

अग्रसेन—चौसर के खेल में ही क्या महारानी; तुम्हारे तो हर समय ही पौ बारह हैं। हमारी गोट केवल तुम्हीं से पिटी है और पिटे भी क्यों नहीं? रूप की मार के आगे भला कौन ठहर सकता है? इसी सौंदर्य ने तो देवराज इन्द्र को भी पराजित किया था।

माधवी—हार को इस तरह छिपाने का प्रयत्न न कीजिये महाराज! अब अपनी शर्त के अनुसार मैं आपसे एक वर माँगने की अधिकारिणी हूँ।

अग्रसेन—अवश्यमेव, यह तो हमारा सौभाग्य है कि तुम हम से कुछ मांगो। बोलो, तुम्हें क्या चाहिये।

माधवी—समय आने पर मैं स्वयं मांग लूंगी। (प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी—(झुक कर) महाराजा की जय! गुप्तचर कमलसेन विशेष कार्य से आपसे मिलने की अनुमति चाहते हैं।

अग्रसेन—आज्ञा है, उन्हें अन्दर भेज दो।

कमलसेन—महाराज की जय हो! महारानी जी की जय हो!!

अग्रसेन—कमलसेन! कहो, क्या समाचार लाए हो?

कमलसेन—महाराज और तो सब भांति आपके राम राज्य में कुशल हैं। केवल यही कि यूनानाधीश अब फिर से सत्रहवीं बार नये दल बल सहित हमारे प्रदेश की सीमा तक आ पहुँचा है।

अग्रसेन—अच्छा? सोलह बार हार खा खाकर लौट जाने पर भी उसका यह दुस्साहस! मालूम होता है, आखिरी बार झेलम ने उसे पुकारा है।

माधवी—यही तो हम लोगों की कमजोरी है, महाराज! हम हाथ में आये हुये शत्रु को यों छोड़ देते है।

अग्रसेन—कमजोरी नहीं महारानी, यह हमारी उदारता है। हारे हुए शत्रु को छोड़ देना कोई साधारण बात नहीं। जानती हो, जब च्यूंटी की मौत आती है तो उसके पर निकल आते हैं?

माधवी—यह तो ठीक है महाराज! पर ये विदेशी लोग भी कितने बेगैरत हैं कि बार बार हारने पर भी उन्हें आने में लज्जा नहीं आती।

कमलसेन—और इस बार तो उसके पास बड़ी विशाल सेना है महाराज! वह दिग्विजय करने निकला है।

अग्रसेन—दिग्विजय? अहा: हा: हा: उसका स्वप्न अधूरा रहेगा, कमलसेन! उसकी विशाल सेना को हमारे मुठ्ठी भर ही सैनिक घास की तरह काट देगे।

"उठेंगी आंख जो हम पर, उन्हें हम फोड़-डालेंगे,
उठेंगे हाथ जो हम पर, उन्हें हम तोड़ डालेंगे"

जाओ कमलसेन! सेनापति को हमारा आदेश दो कि सैना को तैयार रखें। हम भी तैयार होकर आते हैं।

कमलसेन—जो आज्ञा महाराज (प्रस्थान)।

माधवी—नाथ, मेरा वरदान!

अग्रसेन—(हँसकर) तो क्या महारानी सोचती हैं कि हम युद्ध से लौटेंगे ही नहीं, इसलिए तुमने सोचा पहले ही वरदान मांग लिया जाय?

माधवी—नाथ! आप यह क्या कहते हैं। दासी यह कल्पना भी नहीं कर सकती कि आप युद्ध में हार सकते हैं। फिर ऐसी अमंगल बात आप क्यों निकालते हैं? (आंसू पोंछती है)

अग्रसेन—लो, इतनी सी बात में आंसू ? अरी पगली ! (ठोडी छकर) हम तो केवल उपहास कर रहे थे। मांगों, क्या मांगती हो ?

माधवी—नाथ ! आपके साथ मैं भी युद्ध में चलूंगी।

अग्रसेन—क्या कह रही हो महारानी ! आर्य वीर अभी इतने निरवीर्य नहीं हुये हैं कि अपनी रक्षा का भार स्त्रियों पर छोड़ दें।

माधवी—यह कौन कहता है महाराज ! परन्तु देश सेवा के इस पुण्य कार्य में स्त्रियां भला पीछे कैसे रह सकती हैं ?

अग्रसेन—(हंसकर) हम तुम्हारे विचारों की प्रशंसा करते हैं, महारानी ! किन्तु तुम्हारी ये नाजुक कलाइयां तलबार उठाने में समर्थ हो सकेंगी ?

माधवी—मैं यही तो बताना चाहती हूँ महाराज कि आर्य ललनाये कितनी समर्थ हैं। जो कोमल हाथ फूलों के गजरे और नाजुक चूड़ियां पहने रहते हैं वे ही हाथ दुश्मन के सीने में कटार भौंक देने में भी अपनी शक्ति का परिचय देंगे।

अग्रसेन—धन्य हो महारानी ! धन्य हो।

माधवी—महाराज ! नारी यदि एक तरफ सीता और सावित्री है, लक्ष्मी और सरस्वती है, तो दूसरी ओर दुर्गा भवानी भी है। वह शीतल जल है तो दावानल भी। वह गऊ है तो सिंहनी भी। वह अबला है तो सबला भी।

नारी ही नर की जननी है, वीरों की खान कहाती है,
रण चंडी और भवानी है, शत्रु को नाच नचाती है।
यह छुई मुई का पेड़ नहीं, जो उंगली से कुम्हला जायें,
किसकी मजाल जो भारत की क्षत्राणी के सन्मुख आये॥

अग्रसेन—आज गौरव से मेरा हृदय फूला नहीं समाता, फिर भी····

माधवी—फिर भी क्या, महाराज ?

अग्रसेन—हमारे वंश में आज तक ऐसा नहीं हुआ महारानी कि स्त्रियों को लड़ने की नौबत आई हो।

माधवी—इससे क्या हुआ ? आज युग बदल रहा है। हमें अपनी और अपने राष्ट्र को रक्षा के लिये स्वयं समर्थ होना चाहिये।

"मुझमें बिजली सी दौड़ रही, रजपूती शोणित नस नस में,
"मुझको आज्ञा दे दो स्वामी ! मैं आज नहीं आने बस में।
मैं युद्ध भूमि में दुश्मन के, सारे छक्के छुड़वा दूंगी,
भारत माता के चरणों में, यूनानी शीश झुकवा दूंगी॥

अग्रसेन—धन्य महारानी ! यदि तुम्हारा यही आग्रह है तो चलो शीघ्रता करो। अब अधिक समय नहीं।

माधवी—मोहिनी !

मोहिनी—आज्ञा महारानीजी।

माधवी—जल्दी करो, आरती का थाल लाओ।

मोहिनी—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

माधवी—आज मैं धन्य हो गई महाराज ! दुर्गाभवानी आपकी रक्षा करें (दासी का थाल लिये प्रवेश, माधवी महाराज के तिलक लगाकर आरती करती है, तलवार देकर चरण छूती है)

(नेपथ्य से)

रण कंकण कर बांधिये, बरद हस्त में आज,
टेक रखो महाराज की, सिद्ध करो सब काज।
ले तलवारां रण चढ़ो, राता राखो नेण,
बैरी देखत जब मरे, सुख पावे निज नन॥

—: द्वितीय दृश्य :—

समय—मध्यान्ह **स्थान**—रणस्थल

[मंच सज्जा—युद्ध के नगाड़े बज रहे हैं चारों ओर कोलाहल है।]

यूनानाधीश—जुपीटर, जिन्दाबाद ! यूनान जिन्दाबाद !! वीरों आगे बढ़ो। पंजाब को नेस्त नाबूत कर दो यही वह मोर्चा है जहाँ हमें सोलह बार मात खानी पड़ी है। इस बार अपनी ताकत दुश्मन से चौगुनी है। बाज की तरह टूट पड़ो। झेलम का पानी लाल कर दो।

यूनान सेनापति—यही होकर रहेगा। आज वो तलवारों के हाथ दिखलायेंगे कि शत्रु के छक्के छूट जायेंगे।

यूनानाधीश—मुझे तुमसे यही उम्मीद थी सेनापती ! हम दिग्विजय करने चले हैं। सब मिलके शपथ लें कि मरते दम तक पीछे नहीं हटेंगे।

(सब तलवारे ऊंची करके) हम प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक हममें खून का एक कतरा भी बाकी है हम झुकेंगे नहीं ।

सेनापति—(नारा लगाते हुए) यूनान !

सब—जिन्दाबाद ।

सेनापति—शहनशाहे यूनान !!

सब—जिन्दाबाद ।

[नेपथ्य से जबाबी घन गर्जना "हर हर महादेव", "महाराजा अग्रसेन की जय", "दुर्गावतार महारानी माधवी की जय"]

भंग की तरंग, सीस गंग औ भुजंग संग,
अंग में भभूत, भूतनाथ नाचे रण में ।
मुंडमाल कालसी कराल लाल लाल जीभ,
डाकिनी पिचाशनी, के मोद भये मन में ।।
शोणित सने है हाथ, खप्पर लिये है साथ,
चन्डी बरबन्डी लेत आहुति हवन में ।
कट्ट कट्ट दाँत किट्ट किट्ट करे भैरवी के,
बट्ट बट्ट बोटिन को चाब रही क्षण में ।।
उठी नृप अग्र की करारी करबाल जब,
शत्रुसेन चीर चीर चीर चर्राटे है ।
खण्ड खण्ड मुण्ड कट्ट गिरें झट्ट पट्ट,
शोणित की कीच बीच घोर घर्राटे हैं ।।
तीर तरवार चले छपक सिरोही चले,
हाथी हींसे बारबार बाज वर्राटे हैं ।
हूँर हर्राटे, घर धूज घर्राटे शेष,
शीष सर्राटे कौल कंध कर्राटे हैं ।।

[अग्रनरेश और यूनानाधीश का समाना]

अग्रसेन—सावधान यूनानाधीश !

यूनानाधीश—कौन, महाराज अग्रसेन ! लो सम्भालो, हम इतनी देर से तुम्हें ही ढूंढ रहे थे ।

अग्रसेन—और हम तुम्हें । बार बार हार कर भागने वाले कायर, अभी दिखाता हूं कि मेरी तलवार की प्यास आखिर तुम्हीं से बुझेगी ।

मैं संग्रांगण में आज तुम्हें, मृत्यु का खेल खिला दूंगा ।
वह रंग जमेगा आज यहाँ, शोणित की नदी बहा दूंगा ।।
तलवार करेगी वह जौहर, गाजर मूली सा काटूँगा ।
मैं आज तुम्हारी लाशों से, इस रण भूमि को पाटूँगा ।।

यूनानाधीश—ज्यादा बढ़ बढ़ के बात न करो, अग्रसेन ! युद्ध में जबान नहीं तलवारें चला करती हैं ।

चुकाऊंगा वो पहला कर्ज, पीढ़ी तक न भूलेंगी ।
तुम्हारी शेखियाँ महाराज, तलवारों में झूलेंगी ।।

(नेपथ्य से) जय यूनान ! महाराज अग्रसेन की जय !! जय महाकाल !!!

[यूनानी सेनापति छिपकर अग्रसेनजी पर बार करता है, सहसा घोड़े पर सवार महारानी माधवी उसका बार अपनी तलवार पर रोक लेती है ।

माधवी—सावधान सेनापति ! छिपकर बार करना युद्ध नीति के प्रतिकूल है इस कायरता से तुम पंजाब को कदापि नहीं जीत सकते ।

'इसकी मिट्टी में अंकित है, इतिहास हमारे वीरों का ।
अरि दल ने नर्तन देखा है, यहां पर खलकर शमशीरों का ।।
यहां की चप्पा चप्पा धरती, है भरी हुई बालदानों से ।
यह धरती अपने पुरखों की, हमको प्यारी है प्राणों से ।।

सेनापति—(ऊपर देखकर स्वगत) क्या मैं कोई ख्वाब देख रहा हूँ ? ऐसा रूप तो आज तक देखने में नहीं आया । यह आफताब की हूर, वह भी लड़ाई के मैदान में । क्या करने आई है ? (प्रकट) कौन हैं आप ?

माधवी—मैं कौन हूं इसका परिचय मेरी तलवार देगी । ले, संभाल (बार करती है)

सेनापति—(बार झेलते हुए) या खुदा यह औरत है या आफत की परकाली । आह (कटार घुस जाती है) आह (मरते मरते) जिस देश में ऐसी वीर ललनायें हैं वो देश कभी गुलाम नहीं हो सकता ।

यूनानाधीश—ओह सेनापति मारा गया और मेरी सेना भाग रही है । वीरों, ठहरो, शपथ को याद करो ।

अग्रसेन—उखड़े हुए पाँव कभी रुका नहीं करते यूनानाधीश ! सेनापति बन्दी बनालो इसे ।

यूनानाधीश—(बन्दी होते हुये) या खुदा मैं इस बार भी हार गया। महाराज मैं अपनी करतूत पर शर्मिन्दा हूं ।

अग्रसेन—यूनानाधीश ! वही पिछला इतिहास तुम फिर दोहराने लगे । हमारी उदारता का तुम अनुचित लाभ उठाना चाहते हो ।

माधवी—इस बार ऐसा नहीं हो सकता ।

कमलसेन—जी महाराज, महारानी ठीक कहती हैं ।

यूनानाधीश—सौलह बार मुझे महाराज ने क्षमा किया तो क्या एक बार मैं महारानी से उम्मीद नहीं करूँ ? मुझे आशा है कि ऐसे उदार महाराज की महारानी हमें जरूर बखशेंगी ! मैं आपकी शरण हूं महारानी ।

माधवी—क्षमा करने का अधिकार महाराज को है यूनानाधीश ! दासी तो उनकी चेरी मात्र है ।

अग्रसेन—जाओ यूनानाधीश ! महारानी की तरफ से हम तुम्हें मुक्त करते हैं शरण आये हुये की रक्षा करना हमारे सिद्धान्त हैं पर याद रक्खो फिर भूल कर भी इधर मुंह किया तो जान की खैर नहीं ।

यूनानाधीश—आप धन्य है महाराज और महारानीजी ! आपका अहसान मैं जिन्दगी भर तक नहीं भूल सकूंगा । आप दोनों की महानता के आगे यूनान के बादशाह का सर झुकता है । (अभिवादन करता है)

अग्रसेन—जाओ सेनापति ! इन्हें सादर अपनी सीमा से बाहर सुरक्षित पहुंचा दो ।

सेनापति—जो आज्ञा महाराज ! (यूनानाधीश के साथ प्रस्थान)

अग्रसेन—महारानी आज की जीत तुम्हारी रही तुम न होती तो यूनानी सेनापति हमें छल से मार ही डालता ।

माधवी—महाराज दासी को लज्जित कर रहे हैं। भला मैं किस योग्य हूँ ।

सब लोग—महाराज अग्रसेन की जय ! महारानी माधवी की जय !!

—: पटाक्षेप :—

एक पात्रात्मक संगीत रूपक

डायरी एक विदेशी की

आधार :—

△ अग्रोहा हरियाणा राज्य के हिसार जिले की फतेहाबाद तहसील में दिल्ली-सिरसा रोड पर दिल्ली से लगभग ११५ मील दूरी पर स्थित एक छोटा सा कस्बा है ।

△ यह स्थान अग्रवालों का उद्गम माना गया है ।

△ विभिन्न लिपियों, प्राचीन ग्रन्थों, शिला लेखों, सिक्कों आदि पर अगरोहे, आग्नेय, आग्रेय, अगरू, अग्रोदक, अग्रोद, अगलस्सोई, अगोद आदि अनेक नामों से इसका उल्लेख मिलता है ।

△ अनेक विदेशी यात्रियों में से एक फारसी यात्री इब्न बतूता १२०० ईस्वी में भारत आया था, उसने अपनी डायरी में लिखा है कि जब वह हस्तिनापुर से ११५ मील के लगभग पहुँचा तो सड़क के किनारे ही उसे एक ऐसा जन शून्य, उजड़ा शहर मिला जो हिन्दुस्तान की राजधानी होने योग्य था । दीवारों पर गोलियों के निशान थे । ध्वस्त नगर में वस्तुएँ बिखरी पड़ी थी ।

△ वर्तमान में अग्रोहे में कुछ सतियों की छतरियों, सूखा हुआ लक्खीताल, किले की जर्जर दीवारें आदि का पाया जाना ।

उद्देश्य :—

△ अग्रोहे के विगत गौरव के प्रत्यक्ष दर्शन कराना ।

△ सामाजिक दिवंगत महान आत्माओं का स्मरण ।

△ पितृ भूमि के पुनरुद्धार के लिए प्रेरणा देना ।

पात्र :—

इब्न बतूता—एक फारसी यात्री ।

—: दृश्य :—

→ अग्रोहा के विभिन्न खण्डहरों को जड़ पात्र माना जा सकता है।

→ प्रमुख उद्घोषक एक होगा, इब्न बतूता की वार्ता बोलने वाला उद्घोषक प्रथक से नियुक्त होगा—शेष भिन्न-भिन्न खण्डहरों की वार्ता भिन्न-भिन्न ध्वनि में उद्घोषित करने पर ही विशेष आनन्द आएगा। इसमें आवश्यक्तानुसार स्त्री-पुरुष दोनों ही उद्घोषक होंगे।

→ इब्न बतूता की वेश भूषा फारस के लोगों जैसी ढीली-ढाली लबादानुमा होगी। पीठ पर यात्री के उपयुक्त सामान, एक हाथ में सुन्दर सी बड़ी डायरी तथा दूसरे में लाठी होगी।

→ इब्न बतूता केवल अभिनय व भाव प्रदर्शन करेगा, मुख से कुछ भी उच्चारण नहीं करेगा।

→ सभी उद्घोषक भावानुकूल स्वर को उतार-चढ़ाव देते हुए छन्दानुसार लयबद्ध गाएंगे।

→ यथा स्थान उचित वाद्यस्वर मुखरित होंगे।

→ मच पर पहले मंद प्रकाश होगा। धीरे-धीरे खण्डहर स्पष्ट प्रतिलक्षित होने लगेंगे। जिस खण्डहर से वार्ता चल रही होगी उस पर विशेष प्रकाश पड़ेगा।

→ उद्घोषक द्वारा प्रथम छन्द पाठ के समय मंच के अन्तिम श्वेत पट पर यदि भारत के नक्शे में अजंता, ताजमहल आदि छाया चित्रों से दिखाया जा सके तो उत्तम होगा।

समय—१२०० ईस्वी।

स्थान—जन शून्य ध्वस्त अग्रोहा।

[मंच सज्जा—उच्च स्वर में छन्द के साथ-साथ मंच के पृष्ठ भाग के एक कोने से शनैः शनैः इब्न बतूता लाठी टेकता आता दिखता है।]

बोल प्रमुख उद्घोषक का—

दूर देश फारस से चलकर, इब्न बतूता आया।
भारत दर्शन की इच्छा, यात्रा कष्ट उठाया॥

इस धरती के पवन नीर ने, सुख शान्ति पहुँचाई।
स्वागत है! कण-कण में यह ध्वनि समाई॥

[स्वर बदलकर कुछ तीव्र गति से भावानुसार छाया चित्र प्रर्शन]

राम, कृष्ण, महावीर, तथागत यह देवों की धरती।
बड़ी-बड़ी हस्तियां विदेशी, नमन भक्ति से करती॥
इब्नबतूता ने सृद्धा से पान किया गंगा जल।
रजत किरीट हिमालय देखा, पार्वति का अंचल॥
ठगा रह गया देख अजंता, दया बुद्ध की व्यापी।
स्तूपों से सम्राटों की, ऊँचाई को नापी॥
मीनाक्षी की आँखों से, इस सोन चिड़ी को देखा।
खेंच गई कश्मीरी केशर, एक सुगन्धित रेखा॥
नई सभ्यता, नव संस्कृति, ग्रन्थों का मर्म मिला था।
ज्ञान, कर्म, आदर्श प्राप्त कर मन का कमल खिला था॥

बोल इब्न बतूता के उद्घोषक का—

अब हिसार से सीधा महानगर दिल्ली को जाना।
कुरु क्षेत्र की मुक्ति दायिनी मिट्टी शीश लगाना॥

[धीरे-धीरे इब्न बतूता डायरी में लिखते हुए आगे बढ़ता है, कुछ दूर चलकर सहसा ही चौंककर]

अरे! अरे!! यह सड़क किनारे, क्या वीरानी छाई।
महल पड़े खण्डहर, सन्नाटा, उजड़ी नगरी आई॥

[गीदड़ों के रोने व कुत्तों के भोंकने का स्वर, साथ ही गम्भीर करुण स्वर में वाद्य यंत्रों का बजना।]

कुत्ते भौंके, गीदड़ रोए, सुन्दर ल्हाष सरीखी।
कभी रही होगी दुलहिन सी, अब विधवा सी दीखी॥
जाग उठा कौतूहल, देखूँ नगरी है यह कैसी।
व्यथ कथा जानू, किसने की इसकी हालत ऐसी॥

[जन शून्य अग्रोहा नगरी में इब्न बतूता प्रवेश करता है ।]

दूकानों पर, सरकारी भवनों पर नाम लिखा है ।
मिटे मिटाए अक्षर में 'अग्रोहा' सरिस दिखा है ॥

[सूखे हुए एक तालाब को देखकर]

हैं हैं यह कैसा है, सूखा सूखा सा तालाब ।
मूल्यवान, मोती के मुख की, उतर गई ज्यों आब ॥

बोल लक्खी ताल के उद्घोषक का—

मान सरोवर जैसा सुन्दर, मैं था अग्रोहे का ताल ।
लक्ष मुद्राएँ लाया, लक्खी समझ मुफ्त का माल ॥
मुनि ने आँखें खोली, ऋण लौटाने उल्टे पाँव चला ।
पर दाता ने लिया न वापिस, उसके सर पड़ गई बला ॥
तब उसने ताल बनाकर, ऋण का यों भुगतान किया ।
लक्खी ताल तभी से मुझको सब जनता ने नाम दिया ॥

बोल इब्न बतूता के उद्घोषक का—

कर्जदार ऋण देना चाहे, लेनदार कर रहा मना ।
सुनी न देखी ऐसी बातें, किस मिट्टी का सेठ बना ॥

[महामाया गूजरी कन्या विद्यालय के खण्डरों को देखकर]

भव्य भवन, प्रांगण विशाल है, ज्योति सरिस जगते हो ।
इतने सारे कक्ष लिए हो, विद्यालय लगते हो ॥

बोल कन्या विद्यालय के उद्घोषक का—

विद्यालय ही नहीं, महा छात्रा विद्यालय था भाई ।
आचार्या थी बहुत विदूषी, एक गूजरी महा माई ॥
सीमावर्ती छात्रप वह लाहोर नरेश विलासी था ।
अपहरण किया बालिकाओं का ऐसा सत्यानाशी था ॥
तब जम करके युद्ध हुआ था, लड़ी मरी थी कन्याएँ ।
पीस गई दुश्मन को आकर अग्रोहा की सेनाएँ ॥

बोल इब्न बतूता के उद्घोषक का—

धन्य ! धन्य !! छात्राएँ, कैसे कलम कटारी करी कहो ।

[एक टूटी छतरी को देखकर]

यह टूटी सी छतरी क्या है, कौन सो रही मौन अहो ।

बोल सति शीला की समाधि के उद्घोषक का—

मैं समाधि हूं सति शीला की, पति मेहता दीवान थे ।
नृप रिसालु मे लाज बचाने प्राण किए बलिदान थे ॥
युग बीते छत टूटी, पर स्तम्भ गिरे हैं अभी-अभी ।
जात जड़ूला देने आते अग्रवाल जन कभी-कभी ॥

बोल इब्न बतूता के उद्घोषक का—

नमन तुझे सो बार बहिन, उत्सर्ग हुई अस्मत खातिर ।
मुझसे सहस्र विदेशी होंगे, तेरे चरणों में नत सिर ॥
(शीश झुकाना)

[सेठ हरभजन शाह की मेढी के खण्डर देखकर]

इतनी बड़ी दुकान, और यह कितनी बड़ी हवेली ।
क्रूर काल ने करी यहाँ पर खुल करके अठखेली ॥

बोल सेठ हरभजन शाह की मेढी के उद्घोषक का—

हा ! हा ! हा ! हा ! डरना मत, मैं नहीं भूत चुड़ैल ।
बड़े बड़ों की बनी बिगड़ गई, सब किस्मत का खेल ॥
मैं मेढी थी बावन क्रोड़ी, सेठ हरभजन शाह की ।
आज सिर्फ ध्वंशावशेष हूं, फिर भी कभी न आह की ॥
नगर महम में जिसकी अपनी केशर रंगी हवेली थी ।
अग्रोहा को पुनः बसाने की जिसने जिद लेली थी ॥
मूँछ मुँडाई, पाग उतारी, यहाँ एक मेढी खोली ।
एक शख्स ने भरदी सारे नगर वासियों की झोली ॥
पितृ भूमि का उसने जीर्णोद्धार कर दिया था ऐसे ।
मानो काया कल्प हो गई, स्वस्थ हुआ रोगी जैसे ॥

बोल इब्न बतूता के उद्घोष का—

ऐसी देश भक्त, दिग्गज उस हस्ती का क्या कहना।
भाग्यवान थे, मिला जिन्हें इस पुण्य धरा पर रहना॥

[राजा रिसालू के खेड़ों को देखकर]

तुम सैनिक पड़ाव से लगते, कैसे खड़े उदास?
इस परदेशी को बतलाओ, अपना सब इतिहास॥

बोल राजा रिसालू के खेड़ों के उद्घोषक का—

लोग रिसालू के खेड़े कहकर हमको बतलाते।
सैनिक थे, बिन केड़ फिसिस के घोड़े बाँधे जाते॥
था कुशान सम्राट प्रतापी, जिसकी अमर कहानी।
हम घुड़साल सरीखे खेड़े, उनकी शेष निशानी।

[उद्यान में घोड़ी व राणा की प्रतिमा देखकर]

बोल इब्न बतूता के उद्घोषक का—

क्यों घोड़ी पर कलष धरा है, कौन साथ में बोलो।
तुम किसके स्मारक से हो, मन की गाँठें खोलो॥

बोल घोड़ी के उद्घोषक का—

मेरे लिए तरसते सुरगण, मैं थी ऐसी घोड़ी।
उस सारे विनाश की जड़ में, मैं ही रही निगोड़ी॥
राणी सति का भस्मि कलष ले राणा सेवक जाता।
अश्रु लिखा इतिहास विगत का क्यों मुझसे कहलाता॥
वह झड़चन्द नवाब हठीला, था हिसार का वासी।
जालीराम दिवान उसी का राज्य भक्त विश्वासी॥
दोनों के सुत में मेरे ही कारण बात ठनी थी।
नव दम्पत्ति की युद्ध हवन में भस्म बनी थी॥
तन धनदास और नारायणी, मर कर अमर हुए यों।
जालीराम बंसल के घर में, बुझ दो दीप जले यों॥

बोल इब्न बतूता के उद्घोषक का—

[तिलक लगाते हुए]

कुम-कुम चन्दन से पावन भस्मी का तिलक लगाऊँ।
रानी सति के दर्शन करने, निश्चय झुंझनू जाऊँ॥

[महामाया लक्ष्मी का स्फटिकी मन्दिर देखकर]

क्षीर सिन्धु में धवल हंस के बच्चे सा तिरता है।
संग मरमरी शरीर तुम्हारा हाय! हाय!! गिरता है॥

बोल मन्दिर के उद्घोषक का—

मैं कुल देवी लक्ष्मी माँ का मन्दिर, जगने पूजा।
स्वर्ण कलष, तक्षण का ऐसा नहीं नमूना दूजा॥
वीर अभयचन्द की निष्ठा, वैभव की अमिट कथा हूँ।
कुतुबुद्दीन ऐबी ऐबक की, उगली आग व्यथा हूं॥
अग्नि प्रवेश कर गई इस अन्तिम नरेश की रानी।
लक्ष्मी साथ नहीं छोड़ेगी, वर दे गई कल्याणी॥

बोल इब्न बतूता के उद्घोषक का—

रक्त कमल पर बैठी लक्ष्मी, मंद मंद मुस्काती।
जाति सदा ऐसे अमूल्य रत्नों से ही पुज पाती॥

[अग्रसेन जी के महल व किले के खण्डहर देखकर]

कोट कगूरे, दृढ़ प्राचीरें, अति गहन यह खाई।
महल किले की भव्य इमारत यह किसने बनवाई॥
बीच बगीचे के किसकी यह प्रतिमा मग्न बसी है।
छत्र चँवर, कुण्डल, किरीट, कम्मर करवाल कसी है॥

बोल किले के उद्घोषक का—

अग्रवंश के उद्गम, इनका अग्रसेन शुभ नाम है।
किला, महल यह इनका, रजधानी अग्रोहा धाम है॥

न्याय, धर्म, अवतार अहिंसक, वैश्य कर्म स्वीकारा था।
था गणराज्य, समाजवाद था, घर घर भाई चारा था॥
हरि, हर, लक्ष्मी के सेवक थे, देवराज तक हारा था।
नाग वंश में साढ़े सत्रह सुत ने तोरण मारा था॥
शाहबुद्दीन गौरी, ऐवक, क्या अलेक्षेन्द्र बर्बर आए।
मुझे मिटाने वाले मटियामेट हुए तब जा पाए॥
छलनी सीना हुआ, लगे हैं अनगिन गोले गोली।
मेरी ईंट ईंट ने खेली है शोणित से होली॥

बोल इब्न बतूता के उद्घोषक का—

अग्रसेन महाराज आपकी जय जयकार करूँगा।
सच्ची बात डायरी में मैं लिखने से नहीं डरूँगा॥
हे राजन के राज आप ऐसे, सन्ताने कैसी।
कैसे भूल गए हैं अपनी यह यश गाथा ऐसी॥
भारत की राजधानी बनने योग्य छटा बिसराई।
लिखते-लिखते इब्न बतूता की आंखें भर आई॥

बोल प्रमुख उद्घोषक का—

टपक पड़ी दो बूंद, लिखा निज आँसू से इतिहास।
और चल पड़ा इब्न बतूता लेकर लम्बी साँस॥
इब्न बतूता की मृत आत्मा, देते हैं विश्वास।
पुनरुत्थान करेंगे हम, हम ढूँढेगे इतिहास॥

समवेत स्वर में—जिन्दाबाद ! जिन्दाबाद !! जिन्दाबाद !!!

जय अग्रोहा, जय अग्रसेन जिन्दाबाद ! जिन्दाबाद ! जिन्दाबाद !!

—: पटाक्षेप :—

अग्रोहा उद्धार

हरियाणा राज्य में, हिसार के पास इस उजड़ी, उपेक्षित धरती के गर्त में अग्रसमाज का अतीत दफना पड़ा है। समाजवाद के प्रथम प्रवर्तक, अग्रवाल जाति के उद्गम महाराज श्री अग्रसेन ने अपनी राजधानी के रूप में इस नवनगरी को बसाया था, किन्तु कालान्तर में आक्रान्ताओं की बर्बरता के कारण यह कई बार आग और तलवार की भेंट हुई।

किंवदंतियों व ध्वंशावशेषों का कथन है कि महम के बावन क्रोडी सेठ हरभजनशाह ने अपना सर्वस्व देकर इस पितृभूमि का उद्धार किया था।

△ 'अग्रोहा' आज समाज के लिये सर्वाधिक महत्व का विषय है।

△ सौभाग्य है कि इस पुण्य धरा को तीर्थ के रूप में पुनः बसाने का प्रयास चल रहा है।

उद्देश्य :—

△ पूर्वजों की धरती के प्रति श्रद्धा, धन का सदुपयोग, कलम की शक्ति, सामाजिकता की भावना।

पात्र :—

हरभजनशाह—महम का नगर सेठ।

श्रीचन्द—सिरसा का श्रेष्ठि कवि।

सुमुखी—श्रीचन्द की पत्नी।

सौदागर—केशर का व्यापारी।

नागरिक सेठ, मुनीम, सेवक श्रमिक आदि।

—: प्रथम दृश्य :—

समय–प्रभात बेला ।

स्थान—महम की व्यापारिक मंडी व हरभजन की दूकान ।

[मंच सज्जा—सेठ की दूकान पर मुनीम नांवा लेखा कर रहा है, सड़क पर नागरिक आ जा रहे हैं ।]

सेठ १—सारी मंडी मे ऊँट ही ऊँट दीखते हैं, कम न ज्यादा ग्यारह सौ ऊँट लाया है, पूरे ग्यारह सौ ।

सेठ २—और ऊँट भी किसके धान, कपास के नहीं असली केसर के हैं । (सूंघाकर) सारा बाजार केशर की खुशबू से महक रहा है । देखो वो सौदागर इधर ही आ रहा है ।

सौदागर—(लबादानुमा ढ़ीले वस्त्र पहिने, पीछे एक लदा हुआ ऊंट ऐलान करता हुआ आता है) बड़ा नाम सुना था महम की मंडी का, पर ऐसा लगता है यहाँ कोई केशर का खरीददार नहीं है ।

सेठ १—है क्यों नहीं, पाँच पचास ऊँट तो मैं ही ले लूंगा ।

सौदागर—(व्यंग से) ह···ह···ह···ह····! पाँच-पचास नहीं सेठजी, ग्यारह सौ ऊँटों पर केशर लदी है, सारी केशर एक ही व्यापारी को बेचूंगा, समझे ।

सेठ २—(आश्चर्य से) एक ही व्यापारी को बेचोगे ?

सौदागर—और नहीं तो क्या, यहाँ कोई अरचूनी-परचूनी सौदागर हैं, जो तोले-तोले की पुड़िया बांधते फिरें, थोक व्यापारी हैं, थोक व्यापारी ।

सेठ १—अच्छा भाई इतने अकड़ते क्यों हो, मैं एक सौ बोरे एक साथ केशर के ले लूंगा, पर दाम दूँगा दो तीन महीने में ।

सौदागर—ना बाबा ना । यहां तो खरा माल देते हैं, नकद दाम लेते हैं—एक कानी कोडी उधार नहीं रखूंगा ।

सेठ—सारा माल एक दूकानदार को दे और उधार छदाम भी रखे नहीं । तब तो हो गया तुम्हारा सौदा ।

सौदागर—मत हो लेकिन यह तो सब दुनिया जान लेगी कि महम की मण्डी दिवालिया है ।

सेठ १—(चीख कर) सौदागर ।

सेठ २—अपने शब्द वापस लो ।

सौदागर—शब्द वापस लेने से सच झूठ नहीं बन जायेगा, सेठ ! लोग यही कहेंगे कि एक सौदागर महम की मंडी में आया था, उसका माल खरीदने की किसी में शक्ति नहीं थी ह····ह····ह··· इसी मण्डी पर नाज है महम को, यही है वो बाजार जहाँ लाखों का लेन-देन होता है ह···ह··ह·· कोई खरीददार नहीं है, घास खरीदने वाले केशर क्या खरीदेंगे । (अट्टहास करता चल देता है)

सेठ १—ये अपनी आबरू का नहीं, महम की आबरू का सवाल है, सेठ जी ! एक परदेशी व्यापारी आकर आज हमारी नाक उतारने पर तुला है।

सेठ २—(सोचते हुए) लेकिन करें तो क्या करें ? किसके पास इतनी जमा पूंजी है जो इतना माल खरीदे ।

सेठ १—तो महम का नाम डूबा, आज बाजार की इज्जत खाक में मिलकर रहेगी ।

सेठ २—अब तो केवल एक ही आसरा है, सेठ हरभजनशाह के पास चलें, शायद सौदा कर लें ।

सेठ १—चलो, चलो, वो सेठजी भी दूकान पर पधार गये हैं (सेठ जी की गद्दी को नमस्कार कर मसनद के सहारे बैठना) ।

दोनों सेठ—जै गोपालजी की, सेठ जी !

हरभजनशाह—ज गोपाल जी की सेठां, जै गोपालजी की, विराजो, कहो आज कैसे कष्ट किया ?

सेठ २—(बैठते हुए) क्या कहें, सेठजी ! कुछ कहते नहीं बनता, महम के इतिहास में आज तक ऐसा नहीं हुआ ।

हरभजन—अरे आप इतने निराश क्यों हैं ? अपने साथी व्यापारियों को उदास देखकर मुझे बहुत दुःख होता है ।

सेठ १—होगा क्यों नहीं ? आप महम की नाक हैं और आज महम की नाक पर आ बनी है, इस बाजार की प्रतिष्ठा अब आपके ही हाथ है ।

हरभजन—अरे कुछ बोलोगे भी या यों ही पहेलियां बुझाये जाओगे ?

सेठ २—सेठजी आज एक बड़ा व्यापारी ग्यारह सौ असली कश्मीरी केशर के ऊँट लादकर महम के बाजार में आया है ।

हरभजन—आया होगा, महम कोई मामूली मंडी है, नित्य ही यहां ऐसे कई व्यापारी आते जाते हैं ।

सेठ १—लेकिन यह सौदागर और सौदागरों जैसा नहीं है शाहजी ! उसकी एक शर्त है ।

हरभजन—सौदागर की शर्त (आश्चर्य) ।

सेठ २—हां सेठ जी उसका कहना है सारा माल एक ही व्यापारी को बेचूंगा और उधार एक कानी कोड़ी रखूंगा नहीं ।

हरभजन—बड़ी कड़ी शर्त है ।

सेठ १—यही तो उलझन है, सेठजी ! ऐसा लगता है वह माल बेचने नहीं, हमारी इज्जत खरीदने आया है । महम के इतिहास में आज तक ऐसा नहीं हुआ कि कोई व्यापारी खाली हाथ लौटा हो ।

हरभजन—(जोर से) अब भी नहीं लौटेगा । हमारे जीते जी मंड़ी के मान पर आँच आये, ये नहीं हो सकता (सम्बोधन) मुनीमजी !

मुनीम—आज्ञा, अन्नदाता !

हरभजन—जाओ, उस सौदागर से सारा माल खरीदकर दाम चुकते करदो ।

मुनीम—जो हुक्म, सरकार (प्रस्थान)

[एक सेवक जलपान लाता है ।]

हरभजन—(मुस्कराते हुये) लीजिये, सेठजी ! थोड़ा जलपान कीजिये ।

सेठ १—आपकी कृपा है, सेठ जी ! आज आपने महम की मड़ो पर कलंक लगने से बचा लिया ।

हरभजन—केशर बहुत अच्छे अवसर पर आई है भाईजी, गौमती तटवाली मेरी नौखण्डी हवेली लगभग पूरी बन चुकी है, दो चार दिन में ही उसमें रंग रोगन करवाना था । इतनी केशर से आराम से काम चल जायेगा ।

सेठ २—(आश्चर्य से) केसर से हवेलीं रंगी जायेगी ?

हरभजन—क्यों नहीं सेठजी, अग्रवालों का झंडा केसरिया, उनकी पगड़ी केसरिया और उनकी हवेली भी केसरिया—(हंसते हैं) ।

सेठ १—क्या बात कही है, सेठ हो तो ऐसा हो, धन्य हो सेठजी, धन्य हो (हंसते हुये कहता है) ।

हरभजन—सब भगवती लक्ष्मी की कृपा है ।

सेठ २—क्यों नहीं ! क्यों नहीं !! माता लक्ष्मी हमारी कुल देवी है, हम अग्रसेन की सन्तान हैं ।

—: पटाक्षेप :—

—: **दृश्य दो** :—

स्थान—सिरसा

समय—मध्यान्ह

[मंच सज्जा—श्रीचन्द के रसोवडे में भोजन बनाते हुये सुमुखी एक भजन गुनगुनाती है ।]

सुमुखी—अजी सुनते हो, रसोई तैयार है, जल्दी से जीम लो, वरना ठंडी हो जायेगी ।

श्रीचन्द—(भीतर से बोलते हुये आते हैं) आया—(सौदागर से) बैठिये, (हाथ धोकर बैठते हैं, जीमते हुये)

सौदागर—वाह, क्या खीर बनाई है, भाभी ने, बस, मजा आ गया ।

श्रीचन्द—अरे तुम इसमें केशर डालना तो भूल ही गई ।

सौदागर—भाभी, तुम्हारे हाथों की पकाई खीर में बेचारी केशर क्या करेगी ? चार दिन पहले ही तो तुम्हारा ये देवर केशर के ग्यारह सौ ऊंट बेचकर आ रहा हैं ।

श्रीचन्द—ग्यारह सौ ऊंट बेचकर आ रहा है, बाप रे बाप, किसने खरीदी इतनी केशर ?

सौदागर—क्या बताऊं भाभी, महम का बावन क्रोडी सेठ हरभजन शाह ने, उस अकेले ने ही सारी केशर खरीद ली, उधार एक पाई नहीं ।

श्रीचन्द—आखिर इतनी केशर का सेठ करेगा क्या ?

सौदागर—यही तो तारीफ की बात है, श्रीचन्द भैया, सेठ हो तो ऐसा हो । धन तो हजारों पर देखा है, पर मन ऐसा नहीं देखा ।

सुमुखी—सेठजी की प्रशंसा ही किये जाओगे या यह भी बताओगे कि वह उसका करेगा क्या ? गधे चरायेगा ।

सौदागर—गधे नहीं चरायेगा, भाभी—हवेली रंगवायेगा, हवेली ।

सुमुखी—(आश्चर्य से) हवेली रंगवायेगा ? केशर से ?

सौदागर—हां भाभी, वह कोई मामूली सेठ नहीं हैं, इसलिये तो कह रहा हूँ, सेठ हो तो ऐसा हो ।

सुमुखी—(मुंह मोड़कर) हूं, ऐसे ही धन्ना सेठ हैं, तो पहले अपने बाप दादों के टूटे फूटे खंडहरों का तो उद्धार करलें, फिर रहें केशर की हवेली में, मातृभूमि अग्रोहा तो उजाड़ पड़ी है, चले हैं शान दिखाने, ऐसे धन को धिक्कार !!

श्रीचन्द—सुमुखी कभी-कभी तुम चन्द्रमुखी के स्थान पर सूर्यमुखी हो जाती हो । वाणी में इतनी आग, मन में इतनी कसक, नेत्रों में इतना क्रोध ।

सुमुखी—जिसके दिल में दर्द होगा, वो चुप कैसे रहेगा स्वामी ? हमारे पूर्वज प्रातः स्मर्णीय महाराज अग्रसेनजी की पुण्य स्मृति तो नष्ट हो जाय और उन्हीं का एक पुत्र सेठ बनकर केशर की हवेली में ऐश करे ? क्या यह कलंक की बात नहीं है ? क्या यह पूरे अग्रवाल समाज के मुंह पर थप्पड़ नहीं है ?

सौदागर—(हंसकर) भाभी को भगवान ने पुरुष नहीं बनाया, वरना देश का कल्याण कर देती, भैय्या ।

श्रीचन्द—तुम बात को मजाक में ले रहे हो भाई, पर आज एक स्त्री के व्यंग ने, मेरे मर्म पर चोट की है, मेरे कवि हृदय को झंझोंड़ डाला है । मेरी आत्मा की आंखें खोलदी हैं । मैं आज ही सेठ हरभजनशाह को पत्र लिखता हूँ ।

सौदागर—लिख लेना भैया, अभी तो भोजन किया है, कुछ विश्राम करलें ।

श्रीचन्द—तुम विश्राम करो भाई दूर से यात्रा करके आये हो, थके हो, पर मैं तो अब पत्र लिखकर ही चैन से बैठ सकूंगा ।

सुमुखी—ये ही तो वो पवित्र क्षण हैं, जब किसी कवि की कोई अमर कृति जन्म लेती है—किसी देश व समाज के सौभाग्य से ही चेतना के ऐसे स्वर्णिम अवसर आते हैं ।

—: पटाक्षेप :—

—: दृश्य तीसरा :—

[मचसज्जा—नौखंड़ी हवेली के सामने सेठ हरभजन शाह खड़े केशर से पुताई करवा रहे हैं । चालियों पर दो तीन मजदूर पीली कूचियां भरे बैठे है]

हरभजन—देखो भाई, पुताई बढ़िया करना, बिल्कुल चटकदार, रंग माल की कोई कमी नहीं है, पूरा गोदाम केशर से भरा है ।

श्रमिक—कमी किस बात की सेठजी, आपकी तबियत खुश हो जायेगी, ऐसा रंग चढ़ेगा ।

[श्रीचन्द के सेवक का पत्र लिये प्रवेश]

सेवक—(प्रणाम कर) जैरामजी की सेठजी ।

हरभजन—जय रामजी की भाई ।

सेवक—(पत्र देते हुए) मेरे स्वामी श्रीचन्दजी ने यह पत्र आपकी सेवा में भेजा है ।

हरभजन—कौन श्रीचन्दजी, सिरसा वाले ? वे सानन्द तो हैं ना आजकल भी वे कविता लिखते हैं या नहीं ?

सेवक—यह तो पता नहीं, अन्नदाता ! पर कल वे बहुत गम्भीर मुद्रा में खोये-खोये से एकान्त में सारा दिन कुछ लिखते रहे और जो कुछ लिखा, आपकी सेवा में भेज दिया ।

हरभजन—देखें (मन ही मन पढ़ते हैं चेहरे पर आवेश आता है, एकाएक गर्माकर) बंद कर दो यह पुताई (बड़बड़ाते हैं) धिक्कार है तुम्हारे धन को, धिक्कार है तुम्हारी इज्जत को, हरभजनशाह तेरा जीवन धिक्कार है - तू इतना कृतघ्न कैसे हो गया ? अपनी माता को भूल गया, अपनी जन्मभूमि को

बिसरा बैठा, (जोर से) मुनीमजी (मुनीमजी का प्रवेश) तत्काल नगर के अग्रवाल बन्धुओं को एकत्रित करो।

मुनीम—जो आज्ञा।

हरभजन—(सेवक से) और तुम अभी सिरसा जाओ, सेठ श्रीचन्द का हमारा प्रणाम कहना—कहना, हरभजनशाह तुम्हारा बड़ा अहसानमंद है—आपको इसी समय बुलाया है।

सेवक—जो आज्ञा (प्रस्थान)

हरभजन—(स्वगत) धन तो वैश्याओं के पास भी होता है, धन से किसी की साख नहीं बढ़ती (पत्र देखता है) धन पर सांप बनकर बैठना कहां तक उचित है, अपना पेट तो कुत्ते भी भरते हैं। धन्य हो श्रीचन्द ! धन्य हो !! तुम्हारी लेखनी धन्य हो।

[अग्रवाल सेठों का प्रवेश]

हरभजन—प्यारे अग्रवाल सरदारों, आप यह जानने को उत्सुक होंगे कि आज मैंने आपको क्यों कष्ट दिया है ? सच पूछो तो मैंने नहीं आपकी अपनी जन्मभूमि ने बुलाया है अग्रोहा के खडहरों ने आपको याद किया है।

सेठ १—सेठ साहब, आपकी बात हम समझे नहीं, कृपया खुलासा करें।

हरभजन—समझोगे कैसे बन्धुओं, मेरी तरह आप सब लोग भी स्वार्थों में डूबे हो अपने पुरखों को भूले हुए हो न। मैं अपने रहने के लिये करोड़ों रुपयों की केशर से हवेली पुतवा रहा था और यह ध्यान ही नहीं कि अग्रोहा उजाड़ पड़ा है—लेकिन सेठ श्रीचन्द ने एक पत्र लिखकर मुझे जगाया है।

सेठ २—क्षमा हो सेठजी ! वो पत्र हम भी सुनना चाहते हैं—हमें भी अवश्य उससे प्रेरणा मिलेगी।

हरभजन—अवश्य आपने हमारे मुंह की बात छीन ली, तो सुनिये—

हे सेठ ! सेठ कैसे कहदूं, क्या कहते इसको सेठाई ?
अग्रोहा के खंडहर रहते, केशर से हवेली रंगवाई।

धन गणिका के भी होता है, कुत्ते भी अपना पेट भरें।
धन पर पहरा देने वाले, सांपों का आदर कौन करें।।

मखमल को झूल ओढने से, गदहा न बना हाथी कोई।
स्वार्थी सुतों को देख देख, ये धरती ये जाति रोई।।

श्री अग्रसेन का महल आज, मिट्टी में पड़ा सिसकता है।
मां लक्ष्मी का पावन मंदिर, हो धूलि धूसरित हंसता है।।

निज टूटी हुई समाधी से, सतियों का श्राप निकलता है।
उस चहल-पहल की नगरी में, सूनापन और विकलता है।।

धिक्कार तुम्हारी धन दौलत, धिक्कार तुम्हारे तन मन को।
धिक्कार तुम्हारी इज्जत को, धिक्कार तुम्हारे जीवन को।।

[सब बीच-बीच में वाह वाह, खूब खूब करते हैं]

सेठ १—लो वो श्री चन्दजी भी आ ही गये।

[श्रीचन्द का हरभजन के पांव पड़ना चाहना, हरभजन को गले लगाना]

श्रीचन्द—मैं आपसे क्षमा चाहता हूं सेठजी ! आपकी मर्यादा भूलकर मैंने आवेश में आपको न जाने क्या-क्या कटु वचन लिख डाले।

हरभजन—नहीं श्रीचन्द जी, नहीं तुमने मेरा ही नहीं, सारे समाज का उद्धार कर डाला, तुम्हारा नाम अग्रवाल जाति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जावेगा।

श्रीचन्द—मैं अंकिचन किस योग्य हूं सेठजी ! उद्धार तो आप जैसे समर्थ ही कर सकेंगे। मुझे स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि मेरी कल्पना यों साकार हो जावेगी।

हरभजन—केवल धन से उद्धार नहीं होता श्रीचन्द ! उद्धार होता है भावना से, प्रयत्न से (सबको) तो भाइयों ! आज इस अग्र समाज के सम्मुख, मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब अन्न-जल अग्रोहा में ही जाकर ग्रहण करूंगा (पगड़ी उतार कर) जब तक उस उजड़ी नगरी को पुनः नहीं बसाऊँगा, तब तक सर पर पगड़ी और मुख पर मूँछ नहीं रखूंगा। मेरा तन, मन, धन सब जाति के लिये समर्पित हैं। लेकिन.....

श्रीचन्द—लेकिन.....

हरभजन—लेकिन यह काम मुझ अकेले का नहीं है, सारे समाज का है (झोली फैलाकर) आज नगर सेठ हरभजनशाह झोली फैलाकर आपके सम्मुख सहयोग की भिक्षा माँग रहा है। जिसकी जैसी सामर्थ हो तन से, मन से, धन से इस शुभ कार्य में साथ दें, वहां चलकर बसें।

सब—हम सब आपके साथ हैं, हम सर्वस्व देकर भी अग्रोहा का उद्धार करेंगे।

हरभजन—आपकी सुविधा के लिये यह घोषणा करता हूं कि जो भी वहां बसना चाहेगा, उसे व्यापार के लिये जितना माल अथवा धन चाहियेगा, वह मैं बिना ब्याज, बिना मुनाफे के उधार दूंगा। जिसका भुगतान वह इस लोक में अथवा परलोक में कर सकेगा।

श्रीचन्द—सेठ हरभजनशाह !

सब—जिन्दाबाद।

श्रीचन्द—अग्रोहा !

सब—अमर हो।

श्रीचन्द—महाराजा अग्रसेन की।

सब—जय।

—: पट क्षेप :—

और

.....राज्य लक्ष्मी रूठ गई

△ अग्रोहे से अग्रवालों का राज्य कब ? क्यों ? और कैसे गया ? इन प्रश्नों का एक मात्र उत्तर ?

△ विदेशी आक्रान्ताओं की क्रूरता, कपटता प्रकट करना।

△ राज्य लक्ष्मी और कुल लक्ष्मी का अन्तर।

△ अन्तिम अग्रोहा नरेश अभयचन्द का पराक्रम व कला प्रियता।

△ पुरोहिती कर्म, सेवा धर्म और राजकीय मर्म की व्याख्या।

पात्र :—

राज्य लक्ष्मी की छाया—अग्रवंश की कुलदेवी।
अभयचन्द—अग्रोहा नरेश।
महारानी—अभयचन्द की पत्नी।
मन्त्री—अग्रोहा के महामात्य।
राज पुरोहित—राज गुरू।
भाट एक व दो—अग्रवश के भभूतिया भाट (चारण कवि)
दाखाबाई—राजस्थान की लोक गायिका।
सेनापति—अग्रोहा का सैनाध्यक्ष।
कुतुबुद्दीन ऐबक—गुलाम वंशीय दिल्ली का सुल्तान।
मीर कासिम—कुतुबुद्दीन का सिपह सालार।
वजीर—कुतुबुद्दीन का वजीर।
राजदूत—कुतुबुद्दीन का राजदूत।
अब्दुल्लाखान—कुतुबुद्दीन का भूतपूर्व सैनापति।
रक्काश—राज नर्तकी।
ग्रामीणों की परछाई, सभासद, परिचारिका, सेवक, नागरिक, शिल्पी (विश्व कर्मा, मिडास, शिलादित्य, चन्दनमल) शिकारी, आदि।

—: प्रथम दृश्य :—

स्थान—अग्रोहे का राजमहल।

समय—मध्य रात्रि।

[मंच सज्जा—सुन्दर स्वर्ण पर्यंकों पर महाराज व महारानी जरी का शाल ओढे शयन किये हुये है—पार्श्व में श्वेत यवनिका पर शने-शने एक ओर कुछ ग्रामीण महिलाओं का गाय की पूजा करते, धान कूटते, दही बिलोते व श्रमिकों की परछाई का हल फावड़े लिए दृष्टिगत होना—दूसरी तरफ बाल बिखेरे क्रोधित वेश में राज्य लक्ष्मी की परछांई का रूठकर इन ग्रामीणों की तरफ जाते दिखाई देना, महारानी के स्थान पर नैपथ्य से ही कोई बोले तो उत्तम है, महारानी केवल प्रदर्शित करे।]

महारानी—(नींद मे चौंक कर) माँ-माँ, कहाँ जा रही हो तुम ?

राज्यलक्ष्मी—देख नहीं रही हो सामने। (ग्रामीणों की तरफ इंगित करना)

महारानी—देख रही हूँ माँ, ये तो मेरी निर्धन और ग्रामीण प्रजा है, मजदूर हैं, किसान हैं।

राज्यलक्ष्मी—तो मैं इन्ही श्रम के पुजारियों की कुटीया में जा रही हूँ।

महारानी—क्यों माँ क्यों ?

राज्यलक्ष्मी—तुम्हारे क्यों का उत्तर इनके गीत में है महारानी जरा ध्यान से सुनो।

[नैपथ्य से गीत के स्वर तीव्र होते हैं]

पार्श्व संगीत—

तू तो चाल लिछमी, वा घर चालां
जां घर आनन्द बधावणों
जाँ के गाय गुवाड़े, भैंस बाडे
गहरो सो घमंड बिलावणों
जाके पूत पालणे, साहब सेजां
सो घर लगे ये सुहावणों

[गीत लोक गी तकी धुन में सामूहिक नारी कण्ठ से गाया जायेगा।]

महारानी—सुन लिया माँ ये गीत तो हर दीवाली को आपका पूजन करते समय हम सभी वैश्यों के घरों में गाया जाता है।

राज्यलक्ष्मी—(व्यंग से मुस्कराकर) गाया जाता है, पर समझा नहीं जाता। केवल लीक पीटने से सांप नहीं मरता महादेवी !

महारानी—माँ इसका अर्थ तो बिल्कुल साफ है हम सभी जानते हैं कि लक्ष्मी माता वहीं जाती है, जहाँ गऊ ब्राह्मण की सेवा होती है जहाँ पर शान्ति और प्रेम का साम्राज्य है, जो मेहनत और ईमानदारी की कमाई खाते हैं, दान और दया को अपनाते हैं।

राज्यलक्ष्मी—पर महारानी समझते हुये भी तुम्हारे वंशज आज इस मूल मन्त्र को बिसरा बैठे हैं, घर-घर में कलह और फूट के शोले भड़क रहे हैं, गऊ ब्राह्मण की सेवा और दान धर्म तो दूर, लोग लोभी और आलसी हो गये हैं, धर्मकांटे में काण, विवाह शादियों में दहेज के नाम पर सन्तानों का सौदा, क्या नहीं हो रहा है तुम्हारे समाज में। (ग्रामीण छायाओं का प्रस्थान)

महारानी—समय की बलिहारी है माँ, इस कलयुग में जो न हो जाय थोड़ा है, पर मेरे पति तो·····

राज्यलक्ष्मी—तुम्हारे पति धर्मात्मा और न्यायी हैं ये मैं मानती हूँ, किन्तु प्रजा के पाप से भला राजा कैसे बच सकता है ? मैं आज तक महाराज श्री अग्रसेनजी के पुण्य प्रताप मे उनके वंश में अटल होकर बैठी थी, पर अब, तो जाना ही होगा मेरा रुकना असम्भव है।

महारानी—नहीं माँ नहीं ! हम पर दया करों, हमारे अपराध क्षमा करो माँ भगवती !

राज्यलक्ष्मी—बहुत दिन तक राजाओं और सेठ साहूकारों की तिजोरियों में बन्दी रह चुकी महारानी, अब तो खेत खलिहानों को हवा खाने दो, महलों और हवेलियों की ऊँची-ऊँची दीवारों और उसमें होने वाले कुकर्मों से मेरा दम घुटता है।

महारानी—माँ के रूठ कर चले जाने से सन्तान का क्या हाल होगा महामाया ! जरा यह भी तो विचारो।

राज्यलक्ष्मी—सन्तान जवान हो गई है और माँ बूढ़ी, इसलिये अब मेरा निरादर होने लगा है महारानी, मैं बेटों के पराधीन होकर उनकी दासी बनकर नहीं रह सकती, मैं माँ हूँ—माँ की तरह रहूँगी जो मुझे प्यार करेगा, जो मुझे पूजेगा उसके पास जाऊँगी, सदियों से सुख भोगते-भोगते ये मदान्ध हो गये हैं मूर्खों को पता नहीं है, लक्ष्मी चंचला होती है न उसे आते देर लगती है न जाते।

महारानी—फिर भी माँ.....

राज्यलक्ष्मी—तुम्हारा अनुरोध व्यर्थ है, मुझे इनकी आँखें खोलनी ही होगी, इसी में इनका और तुम्हारा कल्याण है, जब तक ये लक्ष्मी पुत्र, लक्ष्मी हीन होकर दाने-दाने को नहीं तरसेंगे तब तक इन्हें शिक्षा नहीं मिलने की, फिर एक बात और भी है.....

महारानी—एक बात और भी है। वह क्या माँ ?

राज्यलक्ष्मी—वह यह कि धीरे-धीरे कायरता सारी जाति में समाती जा रही है आज 'बनिया' शब्द ही डरपोकपन का प्रतीक हो गया है, कैसे करेंगे ये राज्यलक्ष्मी की रक्षा ?

महारानी—मातेश्वरी आपको पता ही है कि हमारी जाति के संस्थापक प्रातः स्मरणीय महाराज श्री अग्रसेन जी ने ही क्षत्रीय धर्म छोड़ कर वैश्य धर्म अंगीकर किया था हिंसा को त्याग कर अहिंसा का व्रत लिया था।

राज्यलक्ष्मी—(तीव्र स्वर में) पर ये नहीं कहा था कि इन्द्र और परशुराम पर विजय पाने वाली जाति वीरता और शौर्य को तिलांजली दे दो। पौरुष हीन जाति धन और धरती का उपभोग नहीं कर सकती ! नहीं कर सकती !! (वेग से प्रस्थान)

[यहाँ महारनी स्वयं बोलना प्रारम्भ करेगी]

महारानी–(आधा उठकर जोर से) यों रूठो नहीं भगवती ! यों रूठो नहीं (बिलखना)

अभयचन्द—होश में आओ प्रिये, डरो नहीं मैं तुम्हारे पास ही हूँ। क्या कोई भयानक स्वप्न देखा है ? (स्वर्ण की झारी से जल पिलाते हैं।)

महारानी—(चेत करके) भयानक नहीं प्राणनाथ ! बहुत भयानक

कुलदेवी राज्यलक्ष्मी बाल बिखेरे क्रोधित नेत्रों से हम से रूठ कर चल दी। (आँसू पोछना)

अभयचन्द—चिन्ता न करो महारानी, (मुस्कराकर) भला माँ भी कभी सन्तानों से रूठती है ?

महारानी—रूठती है महाराज ! अवश्य रूठती है, आखिर सहने की भी कोई सीमा होती है। कपूत बेटे यदि माँ का तिरस्कार कर उसे घर से निकाल दें तो बेचारी माँ क्या करें।

अभयचन्द—(मुस्कराकर) ऐसा कोन मूर्ख होगा महारानी जो महामाया को न चाहे। इसके लिये तो लोग बड़े से बड़ा कुकर्म कर लेते हैं।

महारानी—और कुकर्म करने वालों को लक्ष्मी अपनी चमक से अंधा बनाकर चल देती है महाराज ! आज स्वप्न में, कुल देवी ने, मुझे यही तो कहा कि हमारे वंशजों ने सत पथ छोड़ दिया है, इसीलिये वह बैकुण्ठ निवासिनी हमसे रूठ कर चली गई.....

अभयचन्द—किन्तु महारानी अपनी समझ से तो हमने ऐसी कोई भूल नहीं की जिससे राज्य लक्ष्मी कुपित हो।

महारानी—हमने न सही, हमारी प्रजा ने तो अपने पूर्वजों के आदर्शों को भुला दिया है स्वामी ! राजा प्रजा का पिता होता है, हमें उसके अपराधों का दण्ड भुगतना ही पड़ेगा।

अभयचन्द—ये सब म्लेच्छों के संसर्ग का प्रभाव है प्रिये ! लोगो के आचार विचार सब कुछ दूषित हो गये हैं।

महारानी—म्लेच्छों के संसर्ग से नहीं, अपने स्वार्थों के कारण। हम अपनी कमजोरी का दोष दूसरों के सर नहीं मढ़ सकते, पतन का पथ चिकना होता है स्वामी, व्यक्ति या जाति एक बार गिरी और गिरी, सम्पूर्ण नाश के बिना नवनिर्माण नहीं होता अब इस समाज का नाश होकर ही रहेगा।

अभयचन्द—नहीं नहीं मुझे इसे बचाना होगा, कुलदेवी को मनाना ही होगा, सबेरा होते ही मैं पुरोहित जी को बुलाकर राज्य लक्ष्मी को प्रसन्न करने का अनुष्ठान करूँगा।

महारानी—केवल अनुष्ठानों से कुछ नहीं होगा प्राणनाथ ! लोगों के

चरित्र में सुधार होना चाहिए, उनकी भावनायें ऊँची उठनी चाहिये और उसके लिये अब बहुत देर हो चुकी है।

अभयचन्द—सुधरने के लिये कभी देर नहीं होती प्रिये ! आदमी जब जगे तभी सबेरा है।

महारानी—महाराज कभी-कभी रोग अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है और उसका अन्त मृत्यु के सिवा कुछ नहीं होता (नेपथ्य से मँगला चरण व प्रशस्ती गीत की ध्वनि के साथ-साथ शहनाई तथा नौबत की ध्वनि) लीजिये प्रभात की किरने फूटने लगी हैं बन्दी जन विरद गा रहे हैं—

[महाराज समीप ही रखा घन्टा बजाते हैं, सेवक उपस्थित होकर प्रणाम करता है।]

अभयचन्द—राज्य ज्योतिषि जी की सेवा में निवेदन करो कि महाराज ने स्मरण किया है।

सेवक—(झुक कर) जो आज्ञा महाराज ! (प्रस्थान)

अभयचन्द—मैं मानता हूँ कि समाज पर्याप्त पतित हो चुका है पर जब तक श्वास तब तक आस, अभयचन्द ने कभी निराश होना नहीं सीखा महादेवी, जो कुछ मुझसे हो सकेगा जनता के कल्याण के लिये अवश्य करूँगा।

महारानी—मैं महाराज से सहमत हूँ हमें तो अपना कर्तव्य पूरा करना ही है, पर होगा वही जो भगवती चाहेगी।

अभयचन्द—(मुस्कराकर) ऐसा लगता है महारानी बहुत हताश हो गई हैं।

महारानी—स्वामी ! स्वप्न में मेरी कुल देवी से बहुत सी बातें हुई हैं, उनका कथन मिथ्या नहीं हो सकता।

[सेवक के साथ राजपुरोहित का प्रवेश]

अभयचन्द—पधारिये महाराज (महारानी सहित झुक कर) श्री चरणों में प्रणाम्।

राजपुरोहित—(महाराज को आशीर्वाद देते हुए) सूर्य के प्रकाश की भाँति आपका यश दशों दिशाओं में व्याप्त हो (महारानी की ओर इंगित कर)

अटल सौभाग्यवती हो विष्णु प्रिया लक्ष्मी कुल में अटल रहे। (महारानी का ठंडी श्वास लेना) क्या बात है महारानी जी, आशीर्वाद पर ठंडी श्वास कैसे ली, ब्रह्म मुहूर्त में मुख पर मलीनता के मेघ ?

अभयचन्द—देव रात्रि में महारानी ने एक बुरा स्वप्न देखा है। उसी के शकुन विचार के लिये आपको प्रातः ही प्रातः कष्ट देना पड़ा।

राजपुरोहित—महाराज मन और मस्तिष्क में उठने वाले विचारों का नाम ही स्वप्न है, फिर भी ये कभी-कभी भविष्य का संकेत दे जाते हैं आप स्वप्न का वर्णन करें मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उसका विवेचन करूँगा।

अभयचन्द—महारानी से ही उनका साक्षात्कार हुआ हैं प्रभो ! वे ही आपसे सही तरह निवेदन कर सकेंगी।

महारानी—पुरोहित जी, मध्य रात्रि के समय मुझे ऐसा आभास हुआ जैसे कोई जोर-जोर से मुझसे कह रहा है कि "मैं जा रही हूँ ! मैं जा रही हूँ !!" ध्वनि की तरफ ध्यान देने पर देखा कि कुल देवी राज्य लक्ष्मी रूठकर जा रही है।

राजपुरोहित—हूँ (गरदन हिलाकर)

महारानी—उनके नेत्र अङ्गारे के समान लाल-लाल जल रहे थे, बाल बिखरे हुए थे, क्रोध में थर-थर काँप रही थी, मैंने उन्हें बहुत मनाया, पर वे नहीं मानी, मेरे हाथों से अपने चरण छुड़ाकर आखिर अदृश्य हो ही गई।

राजपुरोहित—(विचार कर पोथी में देखकर) महाराज स्वप्न निश्चित रूप से बहुत ही अशुभ है, कुलदेवी को मनाने से भी न मानना अकल्याण का सूचक है।

अभयचन्द—इसीलिए तो आपको बुलाया है महाराज, इस अपशकुन का निवारण तो करना ही है।

पुरोहित—होनी को कोई नहीं टाल सकता राजन—(थोड़ा सा लय से)

करम गति टारे नाहि टरी।
मुनि वशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी, सोधि के लगन धरी,
सीता हरण, मरण दशरथ को, वन में विपत परी
करम गति टारे नाहिं टारी।

फिर भी आप एक उपाय करें। नगर अग्रोहे के मध्य में कुल देवी का एक सुन्दर मदिर बनवायें, उन्हें प्रसन्न करने के लिए बारह वर्ष तक निरन्तर महालक्ष्मी का जाप करावें इन अनुष्ठानों के पूर्ण होने से अवश्य ही महामाया का क्रोध कुछ कम होगा ।

महारानी—और मैं भी महालक्ष्मी की कथा तथा व्रत प्रारम्भ किये देती हूँ ।

अभयचन्द—मैं आज ही मन्त्री जी को बुलाकर किसी मङ्गल बेला में देवालय का कार्य प्रारम्भ करने की आज्ञा दिये देता हूँ। पण्डित जी बहुत दिनों से देव-धाम का अभाव भी खटक रहा था पर राज-काज के झंझटों से अवकाश ही नहीं मिल पाया ।

राजपुरोहित—भगवती सब कल्याण करेगी स्वामी, आप निश्चिन्त रहें, अब आज्ञा हो ।

अभयचन्द व महारानी—अच्छा। गुरुदेव के चरण कमलों में सादर प्रणाम् ।

राजपुरोहित—(हाथ ऊपर कर) आयुष्मान भव (प्रस्थान) ।

—: पटाक्षेप :—

—: **द्वितीय दृश्य** :—

स्थान—वन्य प्रदेश ।

समय—गोधूलि ।

[मंच सज्जा—कुतुबुद्दीन ऐबक व उसके सेनापति मीरकासिम का शिकारी वेश में आना, पीछे दो शिकारी मरे शेर को घसीट कर ला रहें हैं।]

कुतुबुद्दीन—(पसीना पोंछ कर शेर पर पाँव रखते हुये) उफ ! क्या खूँखार शेर है, टांग में गोली लगते ही किस भयानक तौर से गरजा है जैसे आसमान में बरसाती बादल ।

मीरकासिम—कम्बख्त उछला कितने जोर से था सरकार ! वह तो वक्त पर मुझे ओसान आ ही गया, और खुदा की मेहरबानी से निशाना अचूक बैठा । वरना···

कुतुबुद्दीन—वरना आज कुतुबुद्दीन और मीरकासिम दोनों की कब्रे यहीं बनती । (हंसना)

मीरकासिम—गुलाम के होते हुए ये कैसे हो सकता है हुजूर ! जहाँ आपका पसीना गिरेगा नाचीज अपना खून बहा देगा ।

कुतुबुद्दीन—हम आपसे बहुत खुश हैं सिपहसालार साहब, पर हम यह देखना चाहते हैं कि आप केवल जंगल के ही शेर मार सकते हैं या शहर के भी ?

मीरकासिम—खादिम, हजूर का मतलब नही समझा ।

कुतुबुद्दीन—साफ साफ ही जानना चाहते हो तो सुनो, वह है अग्रोहे का शेर अग्रवाल राजा अभयचन्द ।

मीरकासिम—महाराज अभयचन्द ?

कुतुबुद्दीन—मीर कासिम ! जैसा उसका नाम है वैसे ही उसमें गुण हैं। वह सचमुच अभय है, उस गुस्ताख ने आज तक न तो सरकारी लगान ही दिया और न कभी हमें सलामी बजाने आया ।

मीरकासिम—गरीबपरवर ! सुना गया है कि वह खुद को आपके मातहत नहीं मानता बल्कि अपने को अलग से एक आजाद देश का आजाद राजा ऐलान किये हुए है, यह तो खुल्लम खुल्ला बगावत है सरकार !

कुतुबुद्दीन—और हम इस बगावत को हमेशा के लिये खत्म कर देना चाहते हैं, एक अदने से राजा ने दिल्ली के शाही तख्त को चुनौती दे रखी है। मीरकासिम हमे यह गवारा नहीं है। अगर गौर में सुल्तान शाहबुद्दीन ने यह वाकिया सुन लिया तो हम क्या जवाब देगें उन्हें ।

मीरकासिम—आप फिक्र न करें खुदावंद ! सिर्फ आपके हुकुम की देर है यदि उसका जमी से नामों निशान न मिटा दिया तो मेरा नाम मीरकासिम नहीं ।

कुतुबुद्दीन—हमें तुमसे यही उम्मीद थी मीरकासिम ! पर बहुत सावधानी बरतने की जरूरत है ।

मीरकासिम—(हंसकर) सोच न करें सरकार ! बन्दे के सामने बेचारा अभयचन्द क्या चीज है । पिद्दी न पिद्दी का शोरवा ।

कुतुबुद्दीन—दुश्मन को कमजोर समझना भारी भूल होगी मीरकासिम। अजमतखान और महावतखान जैसे बहादुरों को उन बनियों ने ऐसा मारा कि उनकी रूहें आज तक कब्र में कराह रही हैं, बुन्दे दुन्दे जैसे जग खोर जाँ बाज अपनी तमाम फौज को गाजर मूली की तरह कटवा कर अधाहिज होकर जैसे तैसे भाग सके.....।

मीरकासिम—और बेचारा अब्दुल्ला हः हः हः हः।

कुतुबुद्दीन—अब्दूल्ला के, अभयचन्द ने हाथी पर बैठे-बैठे वो तलवार का हाथ मारा कि उसकी पगड़ी का कुल्ला आधे फर्लाङ्ग पर जाकर गिरा अगर उसने महाराज के पांव पकड़ कर प्राणों की भीख न मांगी होती तो अब तक कभी का खुदा के घर पहुँच गया होता, पर वाहरे वीर उसने पनाहगीर को सिर्फ माफ ही नहीं किया अपनी राजधानी का नगर रक्षक भी बना दिया।

मीरकासिम—हाथ में आये दुश्मन को छोड़ देना वीरता नहीं बेवकूफी है सरकार, और खुशी की बात है कि उस परवरदिगार ने रहमदिली के नाम पर ये मुर्खता इन वेसिरों में कूट-कूट कर भरी है।

कुतुबुद्दीन—अपने-अपने उसूल हैं। हमें भरोसा है कि मौका पड़ने पर तुम ये गलती नहीं करोगे।

मीरकासिम—(अट्टहास) हः हः हः हः पहले तो इस हिन्दू कौम में ही इतनी अकड़ है हजूर कि ये दुश्मन के सामने सर झुकाना जानती ही नहीं और यदि खुदा न खास्ता ऐसा सुनहरी मौका आ भी गया तो मीरकासिम अपने शिकार को कभी नहीं छोड़ेगा।

कुतुबुद्दीन—तो तुम शहरी शेर को मार कर या जंगले में बन्द कर अपने को कुशल शिकारी साबित करोगे, इसी उम्मीद से हम तुम्हें अपनी ये करामाती तलवार भेंट करते हैं जिसने बडी-बडी लड़ाइयों में फतह हासिल की है। (तलवार देता है)

मीरकासिम—(तलवार लेकर घुटनों के बल बैठते हुये) मीरकासिम मालिक के कदमों की कसम खाकर यह वायदा करता है कि अभयचन्द को जंग में शिकस्त दिये बिना, लौटकर मुँह नहीं दिखाऊँगा।

कुतुबुद्दीन—(पीठ थपथपाकर) शाबाश ? मीरकासिम शाबाश !! तुम जैसे बहादुर सिपहसालार पर हमें नाज है मगर एक बार फिर तुम्हें आगाह किये देते हैं कि जहाँ तक समझाने बुझाने से वह शाही लगान देना मंजूर कर लें तो उस सोये साँप को छेड़ने की जरूरत नहीं हैं, अगर किसी भी तरह न माने तो जंग शुरू करना, समझे ?

मीरकासिम—समझ गया सरकार, खूब समझ गया, पर यह पक्का है कि वह बातों से मानने वाला नहीं है।

कुतुबुद्दीन—तो तलवार के साथ-साथ छल बल से भी काम लेना मीरकासिम। अब्दुलखान को अपनी तरफ मिलाने की कोशिश करना। कोई भी शख्स जिन्दगी में अपनी हार को नहीं भूल सकता, अब्दुल्ला केवल मजबूर होकर वहां नौकरी कर रहा है। थोड़ा लोभ देने पर वह जरूर तुम्हारा साथ देगा। हम उसे अच्छी तरह पहचानते हैं।

मीरकासिम—ये आपने बहुत अच्छी बात कही सरकार ! अब्दुल्ला की मदद हमारे लिये बहुत कारगर साबित होगी। महाराज का उस पर भरोसा है। महल वगैरहा के सब रास्ते भी वह जानता है। कहीं जाने आने से उसे कोई रोक भी नहीं सकता।

कुतुबुद्दीन—तुम्हारी सूझ बूझ की हम दाद देते हैं मीरकासिम ! अभयचन्द से सीधी लड़ाई लड़कर पार पाना बहुत मुश्किल है।

मीरकासिम—आप बेफिक्र रहें, बन्दा नवाज आपकी दुआ से मीरकासिम को कई लड़ाइयों का तजुर्वा है। वक्त पर क्या करना है यह वह खूब जानता है। अभयचन्द को अब पता पड़ेगा कि किसी शिकारी से पाला पड़ा था।

कुतुबुद्दीन—खुदा हाफिज !

—: पटाक्षेप :—

—: तृतीय दृश्य :—

[मंच सज्जा—लक्ष्मीजी के मन्दिर का निर्माण कार्य चल रहा है। लगभग पूर्ण हो चुका है, स्तम्भ, मेहरावें सब लगी हैं, मध्य में कमल पर सुन्दर प्रतिमा प्रतिष्ठित है दोनों तरफ सूंड में चंवर लिये दो शुभ्र वर्ण हाथी कलश खंडित और झुका हुआ है यत्र तत्र शिल्पी हथोड़ी छेनी लिये पत्थरों को तराश रहे हैं। खट-खट की ध्वनि आ रही है।]

नेपथ्य से—(पर्दा उठने के कुछ देर बाद, उच्चस्वर से, 'सावधान अग्रोहा नरेश, छत्रपति महाराज अभयचन्द पधार रहे हैं' सब सतर्क होकर खड़े हो जाते हैं, प्रधान शिल्पी विश्वकर्मा द्वार की तरफ स्वागतार्थ बढ़ते हैं। महाराज अभयचन्द, मंत्री तथा राज्य ज्योतिषी आते हैं।)

विश्वकर्मा - पधारिये महाराज, देवधाम के समस्त शिल्पियों की ओर से मैं आपका हार्दिक स्वागत करता हूँ।

अभयचन्द—कहो वरद पुत्र कैसे हो, काम तो सुचारू रूप से चल रहा हैं ना ?

विश्वकर्मा—आपकी कृपा है देव ! देश देशान्तरों से बुलाये गये एक से एक प्रवीण शिल्पी रात दिन पाषाणों में प्राण फूँकने में व्यस्त हैं, महाराज चलकर निरीक्षण करें।

अभयचन्द—राज्य शिल्पी हमें आपकी कला पर न केवल श्रद्धा व गर्व है अपितु हम आपकी संचालन शक्ति की कुशलता से भी अत्यन्त प्रभावित हैं।

पुरोहित—इनकी कुशलता वंश-परम्परागत है महाराज ! इन्हीं के पूर्वजों ने तो महाराज श्री अग्रसेन जी के आदेश पर आग्रा नगरी का निर्माण किया था जिसके आगे इन्द्रपुरी की शोभा फीकी है।

अभयचन्द—आपने अक्षरशः सत्य कहा है पुरोहित जी ! अतः विश्वकर्माजी, निरीक्षण का तो प्रश्न ही नहीं उठता, पर हाँ उन कला के साधकों से मिलकर हमें प्रसन्नता होगी।

विश्वकर्मा—पधारिये महाराज ? (सब का आगे बढ़ना, प्रथम शिल्पी की तरफ संकेत करते हुये) ये है अवन्तिका से पधारे हुए शिल्पी श्री शिलादित्य, हँस, मयूर, कमल, हाथी आदि से युक्त सुन्दर आलेखन उत्कीर्ण करने में आप बेजोड़ हैं।

मंत्री—वास्तव में महाराज, प्रकृति का इतना मनोरम अंकन अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

अभयचन्द—महाराज विक्रमादित्य और पृथ्वी वल्लभ भोज के पुण्य प्रदेश मालव के कलाकार तुम्हारी कला में कवि कालिदास जैसी कल्पना और कोमल भावनायें निहित हैं।

शिलादित्य—सब आपकी कृपा का फल है महाराज। सेवक किस योग्य है।

[सबका आगे बढ़कर दूसरे शिल्पी के पास ठहराना]

विश्वकर्मा—आप हैं दूर दशान्तर मिश्र के निवासी शिल्पी मिडास, पूर्णिमा की चांदनी की भांति आपकी ख्याति चारों तरफ फैली हुई है स्वामी स्तम्भ निर्माण करने में आप विशेष दक्ष हैं।

मिडास—नमस्कार महाराज।

अभयचन्द—आपका नाम तो बहुत दिनों से सुन रखा था सर्जक, किन्तु आपके हाथों का कमाल देखने का सौभाग्य तो अभी ही मिला है, धन्य है वह देश जहां ऐसे अमर कलाकार अवतार लेते हैं।

मिडास—आप जैसे कला के पारखी के दर्शन करके मिडास आज सचमुच ही धन्य हो गया है प्रभो ? (सबका आगे प्रस्थान)

अभयचन्द—(एक व्यस्त शिल्पी की तरफ देखकर) और ये कौन महाभाग है, विश्वकर्मा जी इस तल्लीनता से तक्षण क्रिया में दत्त चित्त हैं ?

विश्वकर्मा—आप हैं राजस्थान के प्रमुख नगर आमेर के सिद्ध हस्त मूर्तिकार चौधरी चन्दनमलजी। देश विदेशों के अनेक मन्दिर आपके द्वारा निर्मित मूर्तियों से ही सुशोभित है देव !

राजपुरोहित—संगमरमर के इस रत्न जड़ित देवधाम में ये प्रतिमा ऐसे ही सुशोभित हो रही है स्वामी जैसे क्षीर सागर में लक्ष्मीजी साक्षात ही विराज रही हो।

मंत्री—सचमुच मूर्ति इतनी सजीव है मानो अभी बोलने ही वाली है इसका तेज सहस्त्रों सूर्यों के समान प्रतीत होता है महाराज !

अभयचन्द—आपका कथन यथार्थ है मन्त्रीजी, भगवती की मधुर मुस्कान, विशाल नेत्र और आशीर्वाद के लिये उठे हुये वरदहस्त की मुद्रा को देखकर कोई भी श्रद्धा से नत मस्तक हुये बिना रह जाये ये असम्भव है।

चन्दनमल—महाराज शिल्पी तो केवल पत्थर को तराशता भर है हथौड़ी छेनी को सृजन की शक्ति प्रदान करने वाली तो स्वयं मातेश्वरी है।

अभयचन्द—वह तो है ही फिर भी जब तक कलाकार के हृदय में भावना और मस्तिष्क में कल्पना नहीं होगी वह साकार रूप नहीं ले सकेगी। कला पवित्र साधना है कठिन तपस्या है।

चन्दनमलजी—दास निर्वचन है महाराज !

मंत्री—महाराज मोतियों के चन्दोवे, दर्पण में जड़े हुए बिल्लौर और मणियों के आँगण, हीरे जवाहरातों की मेहरावें तथा स्फटिक की प्रतिमा के अलौकिक सौन्दर्य से पृथ्वी पर एक नवीन स्वर्ग की सृष्टि हो गई है।

राजपुरोहित—इस मन्दिर के साथ-साथ युग-युगों तक महाराज की कीर्ति पताका फहराती रहेगी। मेरा अनुमान है कि दूर-दूर तक ऐसा देवालय नहीं होगा।

अभयचन्द—आपकी कार्यकुशलता से हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई है विश्वकर्मा जी। देवधाम के निर्माण में जितने भी स्थानीय और प्रवासी कलाकार लगे हुये हैं उनके सुख सुविधा का तो सुप्रबन्ध है ना ?

विश्वकर्मा—महाराज आपकी अनुकम्पा है। सभी शिल्पी स्वामी की उदारता का सर्वत्र यशोगान करते हैं।

अभयचन्द—कला का मूल्य कोई नहीं चुका सकता विश्वकर्माजी। हम भला इन्हें दे ही क्या सकते हैं। ये तो स्वयं सृष्टा हैं। (कलष देखकर) हें ये क्या ? कलष खंडित और टेढ़ा कैसे हो रहा है शिल्पी ?

विश्वकर्मा—मैं बहुत लज्जित हूँ महाराज ! क्षमा चाहता हूँ, हमने कई बार प्रयत्न किया किन्तु मन्दिर का कलष बार-बार खंडित हो जाता है।

अभयचन्द—बार-बार खंडित हो जाता है ?

विश्वकर्मा—हां महाराज सारे प्रयत्न विफल होते जा रहे हैं बड़े-बड़े अनुभवी शिल्पियों की दक्षता पराजित हो चुकी है ऐसा लगता है यह कोई बुद्धि से परे की बात है।

राजपुरोहित—बुद्धि की नही विश्वकर्माजी ये दैवी शक्ति की बात है। मंगल कलष का खंडित होना बहुत बड़ा अपशकुन है महाराज ! राजलक्ष्मी का स्वप्न में कुपित होना, कलष का तिरछा होना, आसार अच्छे नहीं दिखाई देते हैं।

अभयचन्द—(चिन्तित स्वर में) तो गुरू देव आप ही कोई उपाय बतायें कलष के बिना कोई मन्दिर पूर्ण नहीं होता।

राजपुरोहित—महाराज मेरी तुच्छ बुद्धि में तो केवल यही उपाय आता है कि कलष रक्त वर्ण पाषाण का बनवाया जाये।

विश्वकर्मा—(प्रसन्न होकर) हाँ महाराज केवल यही उपाय शेष है कलष धातु का होने पर खंडित होने का प्रश्न ही नहीं रह जाता।

अभयचन्द—मंत्रीजी, कलष निर्माण हेतु जितना मन स्वर्ण ये चाहे राज कोष से तत्काल दिया जावे।

मंत्री—जो आज्ञा महाराज।

अभयचन्द—इसी धन तेरस के दिन मन्दिर का प्राण प्रतिष्ठापन समारोह होगा। विश्वकर्माजी कार्य शीघ्र से शीघ्र सम्पूर्ण होना चाहिये।

विश्वकर्मा—निश्चित रूप से हो जायगा स्वामी।

अभयचन्द—तो अब चला जाये। (सबका प्रस्थान)

—: चतुर्थ दृश्य :—

स्थान—अग्रोहा का राज-दरबार।

समय—मध्यान्ह।

[मंच सज्जा—महाराज अभयचन्द मध्य में ऊँचे रत्न-जड़ित सिंहासन पर मूल्यवान राजसी वेशभूषा में बैठे हैं। छत्र-चंवर शोभायमान हो रहे हैं और झरोखे में बारीक पर्दे की ओट में महारानी आकर बैठती हैं, परिचारिका

स्वर्ण-व्यंजनिका डुला रही हैं। दो छड़ी दार, रजत-दण्ड लिए द्वार पर खड़े हैं सभी समासद राजपुरोहित, मन्त्री, अब्दुल्लाखान आदि यथा स्थान विराजमान हैं एक तरफ चौकी पर तानपूरा लिए राजस्थानी वस्त्रों में दाखाबाई बैठी हैं]

मन्त्री—(झुक कर) महाराज की जय हो ! जोधपुर से पधारी हुई दांडी जाति की लोक गाईका देवी दाखाबाई दरबार में अपना गीत प्रस्तुत करने की अनुमति चाहती हैं।

अभयचन्द—अनुमति है। हमारे दरबार में कलाकारों को सदा से सम्मान मिलता आया है कलाविदों से ही तो दरबार की शोभा है।

दाखाबाई—मुजरों महाराज।

अभयचन्द—(गौर से देखकर) तो तुम हो वह गाइका, कोई ऐसा गीत सुनाओ दाखाबाई जिससे तुम्हारे प्रदेश की संस्कृति मुखरित हो उठे।

दाखाबाई—अन्नदाता ! शृंगार और वीर दोन्यू ही रसां में म्हारों राज आपरो सानी नी राख। मालिक हुकुम देवे वो ही फरमाऊँ।

अभयचन्द—तो वीर रस का ही कोई गीत सुनाओ ! जिसे पौरुष प्रिय नहीं है, वह पुरुष कहलाने का अधिकारी नहीं है।

दाखाबाई—घणी खम्मा महाराज।

(राग मांड में तीखे स्वरों में ढोलक व तानपूरे पर गाती है बीच-बीच में श्रोता वाह-वाह करते हैं)

महाराज म्हाँका ओ जी — ओ अन्नदाता म्हांका थांकी ऊँची पाग।
जीन कसो, घुडला चढ़ों जी—तन केसरिया वेश।
सेल सँभालो हाथ में जी—हेलो मारे देश जी—महाराजा·····

सभासद—वाह····वा····वाह·····वा।

सोन री श्याही माँडश्या रे, जोहर थारा भाग।
बालम सोयो जुद्ध में तो ह्वगायों अमर सुहाग जी—महाराज·····

महारानी—फेर कहो दाखाबाई फेर कहो·····(हार फेंक कर)

सोने री श्याही माँडश्या रे, जोहर थारा भाग
बालम सोयी जुद्ध में तो ह्वगयो अमर सुहाग जी—महाराज····
हँस हँस जोधा झेलसी रे, छाती ऊपर घाव।
विजय पताका ल्यावसी कोई दे मूँछा पर ताव····महाराज

मन्त्री—(मूँछों पर ताँव देकर) कमाल है।

अजब गजब की प्रीत है जी एक पुरुष दो नार
सेजां सोहे कामणी तो रण सोहे तरवार जी····· महाराजा
जो जुजबाला म्हाका····ओ जो ओ लखपति म्हकां।
थांकी ऊंचो आन·····।

अभयचन्द—धन्य हो दाखाबाई धन्य हो जैसा सरस नाम है वैसा ही मधुर कंठ, क्या बात कही है "सेंजा सोहे कामणी रण सोहे तरवार" ओज और रति का अनूठा मिश्रण। वीरता की बात इतने मिठास से भी कही जा सकती है इसका अनुभव आज हमें प्रथम बार हुआ, हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं।

[महाराज मंत्री को सकेत करते हैं। वे मोतियों का थाल भेंट करते हैं]

परिचारिका—(ऊपर से) और महारानी जी फरमा रही है कि वे दाखाबाई को आज से अपनी निजी सेविका के रूप में स्वीकार करती हैं।

अभयचन्द—ये तो और भी प्रसन्नता का विषय है इससे कई बार हमें इनके गीत सुनने का सुअवसर मिला करेगा। हमारे विचार से दाखाबाई महारानी का यह अनुग्रह स्वीकार करेंगी।

दाखाबाई—दासी चरणा रो तावेदार है महाराज, महाराणी साहिबा रो हुकम सर माथे (मुजरा कर प्रस्थान) [सेवक का प्रवेश]

सेवक—(प्रणाम कर) महाराज ! दिल्ली के सिपहसालर मीर कासिम का राजदूत दरबार में उपस्थित होना चाहता है।

अभयचन्द—मीरकासिम का राजदूत ? उन्हें ससम्मान लिवा लाओ।

मन्त्री—महाराज वह अवश्य ही शाही लगान वसूली के लिये आया होगा। (सेवक का प्रणाम कर प्रस्थान।)

अभयचन्द—अग्रामात्य जी····कर वसूली के लिये आने वाला यह कोई पहला तो है नहीं (हँस कर जो हाल औरों का हुआ है वही इसका होगा, (सब हँसते हैं।)

[दूत का प्रवेश]

राजदूत—(सलाम कर) महराज की जय हो। मैं हजूर की सेवा में जरूरी शाही फरमान लेकर आया हूँ।

अभयचन्द—अग्रोहा नरेश शाही दूत का स्वागत करते हैं—राजदूत अपनी भाषा में स्वयं पढें अपने आशय को स्पष्ट करें कि आपके सुल्तान ने हमें क्या सदेश भेजा है।

राजदूत—(पत्र खोलते हुए) खल्क खुदा का, राज्य शहनशाह शाहबुद्दीन गौरी का, हुकुम गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक का, आपको आगाह किया जाता कि कई मर्तबा इत्तला किये जाने पर भी आपने आज तक न तो सरकारी लगान ही दिया है और न ही शाही तख्त को सलाम किया बल्कि ऐसे कारनामे करते हैं जिससे बगावत की बू आती है।

अभयचन्द—बगावत की बू ? ह····ह····ह····ह···· (अट्टाहस) आगे पढ़ो राजदूत और क्या लिखा है उस गुलाम ने—

राजदूत—(आगे पढ़ते हुये) हमारी रहम दिली तुम्हें आज तक मुआफी अता फर्माती रही है पर आपने हमेशा उसका नाजायज फायदा उठाया। अब ये गुस्ताखी और ज्यादा गवारा नहीं की जा सकती, इसलिये आपको हुक्म दिया जाता है कि पन्द्रह रोज के अन्दर इक्कीस लाख रुपया लगान का लेकर खुद व खुद दरबार में हमारे रूबरू पेश हों—अगर इस पर अमल नहीं किया गया तो अग्रोहे की ईंट से ईंट बजा दी जायगी (पढ़ कर मंत्री को देता है, मत्री महाराज को)

अभयचन्द—(आवेश से) राजदूत—अग्रोहे की ईंट से ईंट बजा देने वाला आज तक कोई नहीं जन्मा—क्या कुतुबुद्दीन इस बात को भूला गया कि वह पहले कितनी बार हमसे मात खा चुका है ?

मंत्री—ये कुचले हुए नाग हैं महाराज ! जरा घाव भरते ही फिर फुंसकारने लगते हैं इन लोगों के लिए मान अपमान, हार जीत कोई अर्थ नहीं रखती। (ये लुटेरे हैं) लुटेरे ! जिन्हें लूटमार के बिना चैन नहीं पड़ता।

राजदूत—महाराज जंग न करने के इरादे से ही तो ये सुलह का खत भेजा है। अगर आप चाहें तो ये खून खराबी, ये बरबादी सब कुछ रोके जा सकते हैं—बस सिर्फ लगान जमा कर दें।

अभयचन्द—(जोर से) किस बात का लगान, अग्रोहे के राजाओं ने कभी

किसी को लगान नहीं दिया। किसी को सर नहीं झुकाया है, तुम्हारे मालिक की तरह हम किसी के पराधीन नहीं है।

राजदूत—दिल्ली के तख्त के सामने कोई आजाद नहीं रह सकता, उम्मीद है आप समझौता करके दानाई का सुबूत देंगे।

सेनापति—(तलवार खींचकर) राजदूत तुम अपनी सीमा से बाहर जा रहे हो, हमारे महाराज को दानाई का पाठ पढ़ाते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?

अभयचन्द—तलवारें म्यान में करो सेनापति ! दूत वध्य होता तो हम इसका सर कभी का धड़ से अलग कर देते (हँस कर) और इसके बादशाह के पास इसकी लाश ही लगान के रूप में भेज देते।

राजदूत—महाराज ! (जोर से)

अभयचन्द—चुप रहो, तुम जंग खोर हम हिन्दुओं को नहीं जानते। न हम किसी को गुलाम बनाते हैं न किसी के गुलाम बनते हैं। आगे होकर किसी से शत्रुता करना, किसी की सीमा दबाना हमें पसन्द नहीं हैं, लेकिन जो हमको अनावश्यक रूप से छेड़ता है हम उन्हें कभी नहीं छोड़ते, अगर तुम्हारे बादशाह को इक्कीस लाख रुपये की जरूरत है तो वो हमसे उधार माँगते भीख माँगते—तब हम उस पर बिचार कर सकते थे।

राजदूत—मेरा बादशाह भिखारी नहीं है। कई यतीम उनके कदमों में पड़े रहते हैं। वह तलवार के जोर से कर वसूल करना जानता है। महाराज मुझे इजाजत दें और यह फरमायें कि उन्हें जाकर क्या जवाब दूँ ?

अभयचन्द—(क्रोध से पत्र फाड़कर फेंकते हुये) हमारा यही जवाब है। दोस्ती के लिये हाथ बढ़ाने वाले हाथ में तलवार लेकर नहीं आते। अपने बादशाह से कहना कि अपनी खैर चाहे तो इधर मुँह न करें कहीं ऐसा न हो कि अग्रोहे के छोटे से सिंहासन से टकराकर दिल्ली का तख्त चूर-चूर हो जाये-अब तुम जा सकते हो। हमारे सैनिक तुम्हें सुरक्षित नगर परकोटे से बाहर पहुँचा देंगे।

[खटाक से जूते बजाकर झुककर राजदूत का प्रस्थान]

राजपुरोहित—(गंगाजल छिड़क कर) ओम पवित्रः। महाराज फिर पुण्यभूमि पर म्लेच्छों के चरण पड़ने लगे हैं, युद्ध की भूमिका प्रारम्भ हो गई है राज्य लक्ष्मी का कोप रंग लाने लगा है।

अभयचन्द—पुरोहित जी, हम भला इसमें क्या कर सकते हैं—हमें टूट जाना स्वीकार है पर झुकना स्वीकार नहीं, सम्मान के बिना जीना भी कोई जीना है ?

राजपुरोहित—इस कुल की यही आन है महाराज हँसते हँसते देश धर्म पर न्यौछावर हो जाने से बढकर उत्तम कुछ नहीं होता। (ठहर कर) पर काश ! मंदिर पूर्ण होकर लक्ष्मी जी का अभिषेक हो जाता तो अच्छा रहता।

अभयचन्द—अच्छा तो रहता, पर होता वही है जो भाग्य में लिखा होता है····लक्ष्मी जी के पहले दुर्गा का ही अभिषेक होना है, तो होवे। युद्ध एक यज्ञ है जिसमें माँ के दूध, कुल बधुओं के सिन्दूर और बहिनों की राखियों की आहुति देनी होती है।

सेनापति—आज्ञा महाराज।

अभयचन्द—युद्ध सम्बन्धी सारी तैयारियाँ अभी से प्रारम्भ कर दी जायें। घोड़े, हाथी, रथ, अस्त्र-शस्त्र सैनिक सभी एकत्रित करलें।

सेनापति—स्वामी आप निश्चित रहें, जब-जब भी ऐसे अवसर आये हैं जनता ने तन-मन-धन से साथ दिया है। मैं अपनी ओर से तैयारी में कोई कसर उठा न रक्खूँगा।

अभयचन्द—हमें आप पर पूरा भरोसा है, मंत्री जी।

मंत्री—महाराज !

अभयचन्द—वृद्ध, बीमार, ब्राह्मण और स्त्रियों को शीघ्र से शीघ्र सुरक्षित स्थानों में पहुँचाने की व्यवस्था करदी जाये।

मंत्री कर दी जायेगी महाराज।

अभयचन्द—साथ ही महल में जितना अन्न-जल संग्रहित कर सके करवा दें सारी खड़ी फसलों को जलवादें—कूँए बावड़ी बंद करवाद जिससे शत्रुओंके के हाथ हमारी रसद न लगे।

मंत्री—ऐसा ही होगा प्रभो।

अभयचन्द—अब्दुल्ला खान ! सबसे अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण काम आप पर है, इस सुन्दर नगर तथा महल की रक्षा का भार हम आपको सौंप हैं—ये आपकी परीक्षा का समय है।

अब्दुल्ला खान—गुलाम इस इम्तहान में जरूर खरा उतरेगा सरकार। पठान का बच्चा नमक हराम नहीं होता—आज ही तो आपके अहसान चुकाने का वक्त आया है। मैं अपनी जान देकर भी अपना फर्ज पूरा करूँगा।

अभयचन्द—और गुरुदेव इस संकट के समय एक कष्ट आपको भी करना होगा।

पुरोहित—स्वामी सहर्ष आज्ञा करें—ब्राह्मण का काम केवल दान लेना ही नहीं है महाराज ! यजमान के लिये सर्वस्व साथ देना भी उसे आना चाहिये।

अभयचन्द—आपके आदर्श अनुकरणीय हैं देव, ! हम यह निवेदन कर रहे थे कि रनवास की रक्षा आपको करनी है। देखना है एक भी हिन्दू महिला यवनों के हाथ में न पड़ें यदि जौहर की स्थिति आ ही जाये तो अपने हाथों से उनकी चिता में अग्नि दे हम सबका तर्पण करें।

पुरोहित—महराज····(करुणा से आर्द्र होकर) यह हृदय विदारक कर्म मुझे ही करना होगा, नहीं ऐसा नहीं होगा। यजमान स्वर्ग सिधारें और मैं जीवित रहूँ श्मशान की राख बटोरता फिरूँ ?

अभयचन्द—कर्तव्य के सामने भावुकता कोई मूल्य नहीं रखती पुरोहित जी ! जानता हूँ कि इससे आपके हृदय को बहुत ठेस लगेगी पर हमने बहुत सोच-समझ कर ही यह निर्णय किया है। युद्ध में वीरों की तरह लड़कर मरना आसान है किन्तु अपने प्रियजनों की मृत्यु का दुःख लिये जीना कठिन है और और इस कठिन काम को आपके सिवा कोई नहीं कर सकता।

पुरोहित—(आँसू पोंछकर) करूँगा महाराज ! अवश्य करूँगा ! आपकी आज्ञा से हँसते हँसते इस विष को पीऊँगा··· भगवती कल्याण करे।

अभयचन्द—मंत्रीजी सारी जनता में घोषणा करादो कि कल नगर प्रांगण में सांयकाल एक वृहद सभा होगी हम अपनी प्यारी प्रजा से दो बातें करेंगे !

मंत्री—अच्छा महराज।

अभयचन्द—अब हम आश्वस्त हुये, दरबार समाप्त किया जावे अभी हमें माँ चामुण्डा और महामाया लक्ष्मी के दर्शनार्थ जाना है (हाथ से संकेत करते हैं)

—: पटाक्षेप :—

—: पांचवां दृश्य :—

[मच सज्जा—श्वेत यवनिका पर हिन्दू व मुसलमानों की परछाँइयों का युद्ध रत, हाथी घोड़े, रथ तथा पैदल दिखाई देना बीच में मार काट व घायलों की कराह के साथ-साथ युद्ध के वाद्य यत्रों की दोनों भाटों का चंग पर गाते हुए आना]

दोनों भाट—

भारु बाजे बजे ढमक ढम, खनन खनन खन तलवारें।
तोपें चढी गढ़ों के ऊपर, लगे बरसने अंगारे ॥
साठ हजार सिपाही लेकर कासिम ने धावा बोला।
इतना बड़ा लाव लश्कर था शेष नाग का फन डोला ॥
पवन वेग से रथ चलते थे, सूँड उठा हाथी दौड़े।
रसद तोप खाने के आगे, दस हजार अरबी घोड़े ॥
चारों तरफ नगर को घेरा तुरकी वीर पठानों ने।
काट दिया गाजर मूली सा अग्रवाल सन्तानों ने ॥
गोयल, गर्गों ने यों मारा दुश्मन के छक्के टूटे।
शोणित के सागर में बहते रुण्ड-मुण्ड टूटे टेंटे ॥
अभयचन्द हाथी पर बैठे दो दो तेग चलाते थे।
बार झेलते थे हँस हँस कर मुगल देख भय खाते थे ॥
अग्रसेन के वंशधरों ने लाशों से धरती पाटी।
मरे युद्ध में सब तातारी, कासिम की छाती फाटी ॥
मन में मीर बहुत पछताया, ये कैसी आफत आई ॥
केवल सत्रह दिन के रण में आधी सेना कटवाई ॥

[यहाँ मीरकासिम की परछाई चिन्ता करती साफ दिखनी चाहिए]

भाट:—एबक को क्या उत्तर दूँगा, कैसे मुख दिखलाऊँगा ?
इतनी शान बताकर आया कैसे आन निभाऊँगा ?
यदि चला ये जंग और कुछ, सभी दफन हो जायगे।
इन बनियों से बचकर दिल्ली, एक नहीं जा पायेंगे ॥

सही कहा था बादशाह ने, करना ही होगा छल बल।
मौका पाकर अब्दुल्ला से कहीं मिलूँगा जाकर कल ॥

[कासिम तथा अब्दुल्ला की परछाईयाँ बात करते हुए दिखाना]

भेंट करी कासिम ने उससे ऊँच नींच, यों समझाया।
कुतुबुद्दीन बहुत खुश तुमसे, अरि को अच्छा बहकाया ॥
साथ हमारा दो जीतेंगे, ऐबक देगा खूब इनाम।
तुम्हें बक्स देगा सच जानो, अग्रोहे का मुल्क तमाम ॥
फँसा लोभ में अब अब्दुल्ला, अभयचन्द से दगा किया।
आधी रात अचानक उसने गढ़ का फाटक खोल दिया ॥
विषधर का विश्वास कर लिया दूध पिलाकर पाला था।
नमक हराम उसी नौकर ने नाग सरिस डस डाला था ॥
इधर गया अब्दुल्ला महलों में जहाँ सो रहे अग्र नरेश।
सोया शेर कत्ल कर डाला, हाय रो पड़ा पूरा देश ॥
उधर मीर घुस पड़ा किले में, दस हजार फौजी लेकर।
हमला बोल दिया सोतों पर, गर्ज कह 'अल्ला अकबर' ॥
जब तक संभले हिन्दू तब तक कासिम ने गढ़ जीत लिया।
लूट मार कर अग्रोह को दुष्टों ने श्मशान किया ॥
राजगुरू की कुटिया में थी अब महलों की महारानी।
गर्भवती नहीं सती हो सकी, आँखों से बहता पानी ॥
कासिम ने भेजा परवाना मैं अब दिल्ली आता हूं।
जीत लिया है अभयचन्द को माल लूट का लाता हूं ॥

भाट नं० १—(उच्च स्वर में)

चांदी सोने से लदा हाथी एक हजार।
बिगुल बजाया कूच का, हो घोड़े असवार ॥

भाट नं० २—(उसी स्वर में)

दिल्ली पहुँचा मीर यों, दस दिन के दरम्यान।
एबक के दरबार में खूब हुआ सम्मान ॥

[दोनों का बिग में चले जाना पर्दा उठते ही एबक का दरबार दिखाई देना]

—: पटाक्षेप :—

—: छठा दृश्य :—

स्थान—दिल्ली में कुतुबुद्दीन का दरबार।

समय—अपरान्ह।

[मंच सज्जा--सब समासद यथा स्थान पर बैठे हैं, कुछ ऊंचाई पर मध्य में राज सिंहासन रिक्त है एक तरफ कासिम है सामने वजीर है मध्य में कई थाल जरी के आवरणों से ढके हैं]

नेपथ्य से—(गम्भीर घोष में) बा मुजब, बा मुलाजा होशियार, निगाहे रूबरू परवरदिगार हुजूरे आला, आलम पनाह कुतुबुद्दीन ऐबक तशरीफ ला रहे हैं (सबको खड़े होकर सलाम करना कुतुबुद्दीन का शान से आकर बैठना व संकेत करने पर उसके बैठने के बाद सबका बैठना)

वजीर—(खड़े होकर) जहाँपनाह खुदा की महरबानी से सिपह सालार मीर कासिम अग्रोहे की भयानक जंग को फतह करके दरबार में हाजिर है।

कुतुबुद्दीन—हमारे अजीजों, खैरख्वाहों, अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है कि उसने हमें ये खुशी का दिन दिखाया। हमारे जाँ बाज सिपहसालार ने इसके लिये जो बहादुरी दिखाई है उसके लिये हम उनकी तहे दिल से तारीफ करते हैं और मुबारक बाद देते हैं इस मुश्किल काम को उन्होंने किस खूबी से किया इसकी कहानी उन्हीं की जुबानी सुनने से पहले उनके जोश मकदूम के लिये जश्न का बन्दोवस्त किया जाय (वजीर की ताली बजते ही एक नर्तकी आती है)

मीर कासिम—(खड़े होकर) हुजूर का शुक्रिया है।

रक्काशा—(नृत्य करती हुई गाती है)

भरे दरबार मेरा किसी ने दिल चुराया है।
किसी ने दिल चुराया है, किसी ने दिल चुराया है॥
वो मोती से भी मेंहगा था, वो शीश से भी नाजुक था
उसे कैसे चराकर ले गया, वो कौन आशिक था
किसी ने आख में मेरी मकां अपना बनाया है। भरे····
छुपा दिल सात पर्दों में, दिखा उसको भला कैसे ?
हजारों तोड कर ताले, उसे वो ले चला कैसे ?
लो दुनिया की दीवारों को, वो दिन में लांघ आया है। भरे····

रपट करदी सभी थानों में, कोई भी नहीं सुनता।
न साबित हो सका कोई गवाही ही नहीं बनता॥
या अल्लाह हुश्न की मलिका लुटी, जग मुस्कराया है। भरे····
जवानी की पिये है मय, वो दीवाना यहीं बैठा॥
अदा से मार देता है वो कातिल शान में ऐंठा॥
नहीं जालिम को कोई हाय अब तक पकड़ पाया है।
भरे दरबार में इस नोजवां ने दिल चुराया है॥ भरे····

[रक्काशा मीरकासिम की तरफ इशारा करती है, सब हँसते हैं]

कुतुबुद्दीन—बहुत खूब रक्काशा बहुत खूब (बादशाह का मोतियों का हार पुरस्कार में दे देना, रक्काशा का सलाम करके चला जाना) तो मीर कासिम अब सुनाओ अपने हाल। सभी दरबारी तुम्हारी दिलचस्प कहानी सुनने को बेकरार हैं।

मीरकासिम—बन्दा नबाज ! रवाना होने के पहले ही मैंने एक दूत अभयचन्द के पास भेजा था। कर अदा करने की बात से वह गुस्से से आग-बबूला हो गया और उसने कासिम से जो सलूक किया वह बर्दास्त के बाहर था।

कुतुबुद्दीन—यह अन्दाजा तो पहले ही था, फिर क्या हुआ ?

मीरकासिम—फिर हमारी तमाम फौज ने अग्रोहा को चारों तरफ से घेर लिया। सत्रह दिन जम कर जंग हुआ और·······

कुतुबुद्दीन—और उस जंग में अपनी आधी फौज मारी गई।

मीरकासिम—हाँ सरकार जिन्हें हम डरपोक बनिये और व्यापार करने वाली कौम समझते थे वे बहुत बहादुर निकले, अभयचन्द का तलवार चलाना तो कमाल का था ऐसा लगता था मानो मौत का फरिश्ता हो।

कुतुबुद्दीन--मीर कासिम उनकी सेना में हमारी फौज की तरह भाड़े के टट्टू नहीं होते, वे अपना फर्ज समझ कर अपने वतन के लिए लड़ते हैं।

वजीर—फिर।

मीरकासिम—तो हुजूर मैंने आपकी बताई हुई तरकीब से काम लिया।

अकेले में अब्दुल्ला खान से मिला, बहुत कुछ समझाया बुझाया पर वह अपने इरादे से टस से मस नहीं हुआ।

वजीर—फिर ?

मीरकासिम—फिर क्या वजीरे आलम मीरकासिम भी कच्ची कौड़ियाँ खेला हुआ नहीं है उस पर ये पासा फेंका कि फतह हो जाने पर बादशाह सलामत तुम्हें अग्रोहे का सूबा इनाम में बख्श देंगे तब कहीं जाकर दाल गली।

कुतुबुद्दीन—शाबास ! मीरकासिम शाबास !! तुमने उस कुत्ते के सामने बहुत बड़ी हड्डी डाल दी।

मीरकासिम—और उस पहरेदार कुत्ते ने आधी रात को महल का चोर दरवाजा खोल दिया। महाराज व उनकी तमाम फौज थकी थकाई गहरी नींद में सो रही थी, अब्दुल्ला ने चुपचाप जाकर एक ही झटके में अभयचन्द का सर धड़ से अलग कर दिया और इधर····

कुतुबुद्दीन—और इधर तुमने धावा बोल दिया।

मीरकासिम—हाँ परवरदिगार जंग में जो मौका चूका वही पछताया, इसी उसूल को मद्दे नजर रखते हुये मैंने बड़ी फुर्ती की, इधर तो अचानक हमला हो जाने के कारण वे हक्के-बक्के रह गये और उधर महाराज के कत्ल हो जाने की खबर से सब घबरा गये—इसी मौके का फायदा उठाकर हमने कत्ले आम कर दिया।

वजीर—वाह····वा····बहुत खूब।

मीरकासिम—एक रात में पच्चीस हजार आदमियों को मौत के घाट उतारा गया, सारे शहर को लूटा, एक बड़े मन्दिर में बहुत माल मिला फिर उस बुत खाने में आग लगा दी गई और सबेरा होते-होते महल पर मुगलिया झण्डा फहरा दिया गया।

कुतुबुद्दीन—माँ बदौलत तुम्हारी दिलेरी की दाद देते हैं, अब कहाँ है वो कमीना ?

मीरकासिम—कौन कमीना सरकार ?

कुतुबुद्दीन—वही अब्दुल्ला नमक हराम न मुसलमानों का खैर ख्वाह रहा न हिन्दुओं का, ऐसे इन्सान को हम कड़ी से कड़ी सजा देंगे।

मीरकासिम—वह अपनी कारस्तानी की सजा पा गया हुजूर ! जब यह महाराज को मार कर भाग रहा था तो महाराज जी ने उसे देख लिया और जहर की बुझी हुई ऐसी कटार फेंकी कि उसकी पीठ में घुस कर सीने के पार निकल गई।

कुतुबुद्दीन—कमाल है, चलो अच्छा हुआ। वरना हमें उस नापाक को दोजख भेजने का बन्दोबस्त खुद करना पड़ता।

मीरकासिम—सरकार वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है, कासिम हुजूर की खिदमत में लूट का माल लाया है, सोने चाँदी हीरे जवाहरात।

[उसके इशारे पर सेवक थालों के आवरण हटाते हैं। मालिक ऐसा लगता है जैसे कारूँ का खजाना मिल गया हो।]

कुतुबुद्दीन—(प्रसन्न होकर) वाकई इनकी चमक से सारे दरबार में चकाचौंध हो गई है, क्या कहने हैं अग्रवालों की दौलत के।

वजीर—(हँसकर) अब अग्रवालों की दौलत कहां रही आलम पनाह, अब तो आप इसके मालिक हैं।

मीरकासिम—इन ककड़ पत्थरों के अलावा कासिम कुछ जिन्दा दौलत भी लाया हैं, शहनशाह।

कुतुबुद्दीन—(आश्चर्य से) जिन्दा दौलत ! हम तुम्हारा मतलब नहीं समझे।

मीरकासिम—(ताली बजाता है सेवक दांखा बाई को लाता है) यह रही वह दौलत सरकार !

कुतुबुद्दीन—(उधर देखकर) कौन हैं ये ?

मीरकासिम—ये अग्रोहे के महाराज की बेवा है सरकार !

कुतुबुद्दीन—महारानी !

वजीर—(एकदम) अग्रोहे की महारानी ?

दाँखाबाई—(घूंघट हटाकर) महारानी नहीं, महारानी की दासी दाँखाबाई।

मीरकासिम—ये झूंठ है हजूर, ये सरासर झूंठ है। मैंने खुद इसे अपनी आँखों से महाराज की ल्हास के पास महारानी के लिबास में बैठे रोते देखा है।

दाँखाबाई—(हँसकर) ह····ह··· ह····ह देख्यो है शाही कपड़ा में देख्यो है कासम साब गाबा देखर मिनख की पिछाडाकरो हो, धन है थां की अकल ने।

कुतुबुद्दीन—ये क्या तमाशा है, सारा वाकया खुलासा बयान करो।

दाँखाबाई—म्हारो नाम दाखाबाई है, मैं एक लोक गायिका ही, महारानी जी किरपा करके मने आपकी सहेली बणाली।

वजीर—तू सहेली हो चाहे चमेली हमें इसमे क्या मतलब, बेकार वक्त जाया न कर और काम की बात बता।

दाँखाबाई—काम की वात अतरी है कि मैं महारानी जी का कपड़ा पहर लिया महारानी जी म्हारा बठोने मे ब्याने महला सूँ पार करया अठिने ओ मूरख मने (मीर कासिम की तरफ संकेत कर) महारानी जाण पकड़े ल्यायो।

मीरकासिम—या खुदा यह क्या करिश्मा है ?

कुतुबुद्दीन—जालसाज औरत अब वह महारानी कहां है ?

दाँखाबाई—महारानी ! ह····ह····ह··· जब तक थांको दूत अग्रोहे पूगेलो बठे तक, वे सती हो चुक्या होवेला।

वजीर—सती ?

कुतुबुद्दीन—ये सती होना क्या बला है ?

दाँखाबाई—थां जश्या राक्षस आ बात नीं समझ सके।

मीर कासिम—(हाथ पकड़कर) बदतमीज औरत जवान को लगाम दे।

दाँखाबाई—(हाथ झटक कर) दूर हट कमीणा (उसकी कटार निकाल कर अपने भौंक लेती है) महारानी जी/ दासी आपको फरज पूरा कर दियो,

आपके सती होवा ताणी मैं या पापाँ ने धोखा में राख्यों अब आ रही हूं सरग में मिलाँ ला (गिर जाती है)।

कुतुबुद्दीन—या अल्लाह-बला की औरत है ये हुश्न और ये उसूल। हिन्दू कौम को समझना बहुत मुश्किल है।

मीरकासिम—ये हाल तो तब है जब ये नोकरानी है, फिर महारानी का तो अन्दाज लगाना भी नामुमकिन है।

वजीर—वाकई।

मीर कासिम—इसकी वफाई की जितनी तारीफ की जाये उतनी कम है हजुर।

कुतुबुद्दीन—मरने दो इसकी बफाई को, हम तुम्हारी बफाई से बेहद खुश है आज से तुम्हें अग्रोहे का सूबेदार ऐलान करते है। वजीरे आजम !

वजीर—आलम पनाह।

कुतुबुद्दीन—मीरकासिम को अग्रोहे का पट्टा लिख दिया जाये।

वजीर—जो हुक्म सरकार।

मीरकासिम—(सलाम कर) कासिम हुजूर की दरिया दिली की शुक्रिया अदा करता हैं, यह जिन्दगी भर आपका जर खरीद गुलाम रहेगा।

वजीर—एक अर्ज और थी सरकार !

कुतुबुद्दीन—कहिये वजीर साहब। इस खुशी के मौके पर जो कुछ कहना चाहो बेखौफ कहो।

वजीर—आलमपनाह अग्रोहे की जीत की खुशी में कुतुबमीनार पर एक मंजिल चढ़ा दी जाये।

कुतुबुद्दीन—आपने ठीक याद दिलाया वजीरे आजम। दिल्ली की कुतुब ही तो हमारी फतह की निशानी है।

[घंटा बजने की नेपथ्य से ध्वनि आती है।]

वजीर—नामज का वक्त हो गया है सरकार ।

कुतुबुद्दीन—दरबार बरख्वास्त ।

—: पटाक्षेप :—

—: सातवां दृश्य :—

स्थान—अग्रोहा के भग्न मन्दिर का प्रांगण ।

समय—अरुणोदय ।

[मंच सज्जा—चंदन की चिता सजी हुई है सारी प्रजा पुष्प लिये उदास खड़ी है पालकी में पूर्ण श्रृङ्गार युक्त महारानी का प्रवेश]

महारानी—पुरोहित जी (गोद से बच्ची को देकर) अपनी आत्मा को आपके हाथ छोड़कर जा रही हूं इस अभागी के कारण ही मुझे इतने दिन महाराज का वियोग सहना पड़ा ।

राजपुरोहित—लाइये महारानी (आँसू पोंछकर) ये स्वर्गीय महाराज की अन्तिम निशानी है, दोनों कुंवर तो पहले ही रण की भेंट हो गये । (आँसू-पोछकर)

महारानी—गुरुदेव मेरा इतना ही निवेदन है कि इस हतभागिनी को माता पिता का अभाव न मालुम पड़े ।

राजपुरोहित—देवी मैं इसे प्राणों की तरह पालूंगा इसी के लिये जीवित रहुंगा ।

महारानी—और जब यह बड़ी हो जाय तो किसी योग्य कुल में विवाह कर देना ।

राजपुरोहित—आप निश्चित रहें महारानी ये साक्षात लक्ष्मी है जहां जायेगी वहां उजाला हो जायेगा ।

महारानी—तो अब विलम्ब न किया जाय मूहुर्त टल रहा है महाराज मेरी प्रतिक्षा कर रहे होंगे, न जाने वे कैसे होंगे ।

राजपुरोहित -लीजिये महारनी ! ये महाराज का प्रतीक श्रीफल ।

महारानी—(नारियल लेकर आँसू भर कर) मेरा भाग्य कितना फूटा हुआ है कि अन्तिम क्षणों में भी महाराज का साथ न दे सकी ।

राजपुरोहित—विवशता थी महारानी, दैव के आगे किसी का वश नहीं चलता है ।

महारानी—(सखियों से) आप सब मुझे विदा दें, मैं अग्नि के रथ पर बैठ तुम्हारे महाराज से मिलने जा रही हूं ।

सखियां—(विलखकर) महारानी—महारानी (चरणों में गिरना)

महारानी—(उठाकर) पगली यों रोती हो ये तो प्रसन्नता का अवसर है मैं अपने प्रियतम के पास जा रही हूं । मंगल गीत गाओ, नाचो अपनी प्यारी सखी को आँसुओं से नहीं, मुस्करा कर विदा दो । (चलकर चिता पर बैठना)

राजपुरोहित—

मंगलं भगवान विष्णु, मंगलं गरूड़ ध्वजं
मंगलं पुण्डरी पाक्षणंम, मंगलाय स्तनों हरि

(पुष्य फेंकना)

[स्वतः अग्नि प्रकट होना]

सब नागरिक—(फूल उछालकर) महारानी की जय, महारानी की जय ।

महारानी—(जलते हुए) मैं राजमाता अपनी जाति के लोगों को अपने सतीत्व के प्रभाव से शुभाशीर्वाद देती हूँ कि मेरे वंश से लक्ष्मी कभी नहीं जायगी ।

राजपुरोहित—लेकिन, मां स्वप्न में तो लक्ष्मी जी ने आपसे कहा था कि वे अग्रवालों को सदा के लिए छोड़कर जा रही है ।

महारानी—ये ठीक है कि इनके कुकृत्यों से कुपित राज्य लक्ष्मी अब कभी इनके पास नहीं आयेंगी किन्तु भगवति महामाया सदा इनके पास रहेगी

ये बिना मुकुट के राजा होंगे इनके अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार लक्ष्मी माता की कृपा समाज पर कम या अधिक भले ही हो पर उनकी अनुकम्पा सदा बनी रहेगी। भगवान इनका भला करे, इनको सुमति दे—हरिओम।

राजपुरोहित—राजमाता की।

सब—जय।

राजपुरोहित—सती माता की।

सब—जय।

राजपुरोहित—महाराज अभयचन्द।

सब—अमर हों।

सब—बोल अग्रसेन महाराज की जय।

(धीरे-२ पर्दा गिरता है, उठता है, गिरता है।)

पार्श्व से गम्भीर ध्वनि में :—

दोहा

स्वर्ग सिधारे नृप अभय, सती हुई मां आज।
कुलदेवी रूठी हुई, चिन्तित अग्र समाज॥

—: पटाक्षेप :—

रूप की राख

विशेष :—

'एक युद्ध दो विद्यालय' तथा प्रस्तुत एकांकी 'रूप की राख' दोनों ही सती शीला को लेकर हैं। पाठक चक्कर में पड़ सकते है, लेखक की बुद्धि पर तरस खा सकते हैं कि एक ही स्त्री पात्र दो प्रथक प्रथक कारणों को लेकर दो बार सती कैसे हुई। यह सत्य है या वह ? मैं कहता हूं कि दोनों ही सत्य नहीं हैं जब मेरे पास पुख्ता प्रमाण ही नहीं है तो किसका पक्ष लूँ। सत्यासत्य का निर्माण अग्रोहे का इतिहास उजागर होने पर ही होगा।

पात्र, कथावस्तु आदि तो बाह्य उपकरण है सीप-घोंघे है अमूल्य मोती है आदर्श चरित्र ! पढ़ो-सुनी बातों ने मुझे तत्सम्बन्धी दो आख्यान दिए और मैंने दो एकांकी लिख डाले। राजा रिसालू के खेड़े व सती शीला की छतरी के अवशेष आज भी अग्रोहा में विद्यमान है। अतः यह तो स्पष्ट है कि शीला नाम की किसी देवी ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। अब प्रश्न यह रह जाता है कि इस कारण किया या उस कारण ? इस पचड़े में पड़ने की मैंने आवश्यकता नहीं समझी, समाज के लिए दोनों ही उच्चादर्श हैं ! बदनीय हैं !! मेरा विनम्र निवेदन है कि आप इसे सामाजिक व ऐतिहासिक दृष्टि से न लेकर शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से स्वीकारें तो मानेंगे कि आपको दो चरित्र दो कथानक का सुख मिला।

एकाँकी के आधार :—

△ अग्रोहा में सती शीला तथा रिसालू के खेड़ों के ध्वंशावशेषों का पाया जाना।

△ इतिहासविज्ञों द्वारा प्रसिद्ध कुषान वंशी सम्राट "विनकैंड फिसिस तथा राजा रिसालू का एक ही व्यक्ति बताया जाना।"

पात्र :—

रिसालू उर्फ विनकैंड फिसिस—अग्रोहा का समीप वर्ती सम्राट।
मेहताशाह—राजा रिसालू का दीवान (रूपाशाह का पुत्र)।
रूपाशाह—श्याल कोट का प्रसिद्ध अग्रवंशीय व्यक्तित्व।
सैनापति—राजा रिसालू का सैनाध्यक्ष।
हरभजनशाह—अग्रोहा का नगर सेठ।
शीला—हरभजनशाह की पुत्री (रूपाशाह की नव विवाहिता)।
तीन सेनिक, सेवक, सेविका आदि।

—: प्रथम दृश्य :—

समय—कुशान साम्राज्य काल—अनुमानतः १३० ई० ।

स्थान—अग्रोहा में राजा रिसालू का खेड़ा । अश्वशाला व सैनिक छावनी ।

[मंच सज्जा—सैनिक पड़ाव का सादृश्य ! अस्तबलों से घोड़ों के हिन-हिनाने का स्वर, शिवरों के आस-पास घूमते सैनिक मध्य में आग तापते, हुक्का चिलम पीते हुए तीन सैनिक का वार्तालाप करते दिखाई देना ।]

पहला सैनिक—यार कमाल हो गया, इस बार घुड़-दौड़ में जो मजा आया है राम कसम जिन्दगी में नहीं आया ।

दूसरा सैनिक—क्यों वे उल्लू के चर्खे ! ये घुड़ सवारी, तीरंदाजी, मल्लयुद्ध आदि राजकीय प्रतियोगिताएँ तो दुर्गा पूजा पर हर साल ही होती है, इस बार ही ऐसी कौन-सी खासियत हो गई जो तुझे अभी तक मजा आ रहा है ?

पहला सैनिक—उस्ताद ! तुम तो अपने दीवान जी के साथ सैर सपाटे करने श्यालकोट चले गये थे—अब या तो जी हजूरी ही करलो या घुड़ दौड़ के ही मजे ले लो ।

तीसरा सैनिक—(पहले सैनिक के धपमार कर) कम्बख्त मालिक की सेवा को जी हजूरी कहता है, मेहता शाह जी आदमी क्या देवता है देवता । उन जैसा ईमानदार और भला वजीर है किसी आस-पास के राज्य में ?

दूसरा सैनिक—गरीबों के लिए तो वे भगवान हैं भगवान ! सहसा ही उनके पिता जी कुछ अस्वस्थ हो गये थे सो समाचार पाते ही दीवान जी को जाना पड़ा मुझे भी साथ लेते गए । क्या ठाठ है उनके पिता रूपाशाह जी के । दस द्वारों की नोखंडी हवेली, हाथी, घोड़े, नोकर, चाकर । उनके नाम का डंका पुजता है उस क्षेत्र में ।

पहला सैनिक—क्यों नहीं ! क्यों नहीं !! आखिर है भी तो अग्रवाल जाति के जन्मदाता महाराज अग्रसेन जी के वंशज !! सतपीढे रईस हैं शाहजी अब कैसी है उनकी तबियत ?

दूसरा सैनिक—तबियत का तो सिर्फ बहाना था यार ! असल बात तो कुछ और ही थी ।

तीसरा सैनिक—असल बात और क्या थी ?

दूसरा सैनिक—वे दीवान जी को समझा बुझा कर उनका विवाह कर देना चाहते हैं, पर पता नहीं क्यों दीवान जी हां ही नहीं भरते ।

पहला सैनिक—मैं बताऊं हाँ क्यों नहीं भरते ।

दूसरा व तीसरा सैनिक—(पास आते हुए जल्दी से एक साथ) बता ! बता !!

पहला सैनिक—तुम किसी को कह दो तो ?

दूसरा सैनिक—नालायक नई बहू जैसे नखरे कर रहा है हमारा इतना भी भरोसा नहीं ।

तीसरा सैनिक—अरे बाबा ! कहा तो लिखकर दे दें नहीं बताऐंगे । नहीं बताऐंगे !! नहीं बताएगे !!!

पहला सैनिक—(धीरे से कान के पास मुंह ले जाकर) सुना है बावन क्रोड़ी सेठ हरभजनशाह की पुत्री देवीशीला और दीवन जी दोनों एक दूसरे के रूपगुण पर रीझे हुए हैं ।

दूसरा सैनिक—(अपने हाथ पर हाथ मारकर) ये मामला है । तभी वे पिताजी की हवा बदली के बहाने पूरे परिवार को ही अग्रोहा ले आए हैं अब शायद शादी की बात चलाई जाएगी ।

तीसरा सैनिक—यह तो सोना और सुहागा होगा । उस दिन घुड़ दौड़ में शीला देवी ही तो प्रथम आई थी । हमारे कुशान कुल सूर्य महाराज विनकैड फिसिस उर्फ राजा रिसालू जिनकी इस घुड़शाल में (घोड़ों की तरफ संकेत करके) एक से एक बढ़िया हजारों घोड़े बँधते है उन्होंने उस सोलह वर्ष की छोकरी से ऐसी मात खाई, ऐसी मात खाई कि बस सारी हेकड़ी निकल गई ।

पहला सैनिक—हेकड़ी ? हेकड़ी अपने सेनापति जी की कम निकली । अपने जैसा घुड़सवार दूसरे को समझते ही नहीं थे । देश प्रदेश के अतिथियों के सामने अच्छी किर किरी हुई ।

दूसरा सेनिक—अरे वो तो दीवानजी उस दिन वहाँ नहीं थे वरना शीला देवी को भी जीतने में जोर पड़ता। खैर जो कुछ हुआ सो ठीक हुआ। जीती तो आखिर हमारे ही राज्य की कन्या।

तीसरा सेनिक—पर यार! एक राजा और सेनापति का बनिए की लड़की से हार जाना क्या शर्म की बात है?

पहला सेनिक—शर्म और सेनापति जी को? हः हः हः हः कहीं आज ज्यादह चढ़ाई है क्या? जिसे अपने सेनिकों के साथ पशुता का वर्ताव करते शर्म नहीं आती वह घुड़ दौड़ में हारने से शर्माएगा? यह तो महाराज की चापलूसी कर करके उनके मुँह लगा हुआ है वरना कभी की छुट्टी हो गई होती।

दूसरा सेनिक—दोष तो महाराज का ही है? जो इसके चक्कर में आकर कभी प्रजा का दुख-सुख नहीं देखते। यही दुष्ट तो दीवान जी के खिलाफ रात दिन महाराज के कान भरता रहता है।

तीसरा सेनिक—कान क्यों नहीं भरेगा, यह उनकी योग्यता से जलता है, फिर एक चोर और साहूकार के बने भी तो बने कैसे।

पहला सेनिक—(घोड़े की टापों का स्वर, विगं की तरफ देखकर) चुप! चुप!! वह जालिम इधर ही आ रहा है (सेनापति का प्रवेश, संभव हो तो घोड़े दिखाएँ, तीनों सेनिक सावधान की मुद्रा में होकर सलाम करते हैं।)

सेनापति—क्यों वे निकम्मो! तुम यहाँ फालतू बैठ कर चण्डू खाने की हाँक रहे हो?

दूसरा सेनिक—सरकार! हम सब आप ही के गुण गा रहे थे। मैं कह रहा था, सेनापति हो तो हमारे सरकार जैसा।

सेनापति—(हँस कर) ठीक है! ठीक है!! बेटा हमारे ही मक्खन लगा रहा है। कल ही तो दीवानजी के साथ श्यालकोट से लोटा है, हाँक रहा होगा उनकी तारीफें।

[सेठ हरभजनशाह के चर का निमंत्रण पत्र लिए प्रवेश]

चर—(झुककर) श्रेष्ठि हरभजनशाह का यह सेवक, सेनापति जी को प्रणाम करता है।

सेनापति—कहो कैसे आना हुआ?

चर—(निमंत्रण पत्रिका देते हुए) हजूर! कल शाहजी की पुत्री देवी शीला का जन्म दिन है। बड़े-बड़े सेठ साहूकार राजकीय अतिथि इस अवसर पर पधारेंगे। भोजः मनोरंजन आदि का वृहद् अयोजन है, आप भी सादर आमन्त्रित हैं।

सेनापति—(पत्रिका देखतें हुए) इतना बड़ा आयोजन? जैसे जन्म दिन न होकर विवाह हो।

चर—कौन जाने आपका कथन ही सत्य हो जाये।

सेनापति—(चौंक कर) क्या मतलब?

चर—मतलब यह कि इस वर्ष की राजकीय घुड़दौड़ प्रतियोगिता में जब शीलाजी विजयी हुई तो सेठजी ने यह प्रतिज्ञा भी की, कि "जो भी नर श्रेष्ठ शीला की इस घोड़ी पर सवार कर सकेगा, उसी से शीला का विवाह करूँगा।" यह तमाशा भी कल हो होने वाला है सरकार। कौन जाने किसका भाग्य खले।

सेनापति—तो क्या उस घोड़ें पर कोई सवारी भी नहीं कर सकता?

चर—हः हः हः हः हुजूर वह अरब प्रदेश की अबलक घौड़ी है, घोड़ी क्या है बिजली है बिजली। आज तक तो सिवाय शीलादेवी के कोई उस पर चढ़ नहीं सका है आगे की ईश्वर जाने।

सेनापति—(गर्व व उपेक्षा से) हूं ...जिस अग्रोहा के ग्यारह से घुड़सवारों ने कभी दिल्ली पति महाराज अनगपाल का दिल हिला दिया था, जिस धरती पर आज भी परम प्रतापी राजा रिसालू की इतनी बड़ी अश्वशाला है क्या उसका सेनापति एक घोड़ी को वश में नहीं कर सका? कह देना अपने सेठजी से "हम आयेंगे। अवश्य आयेंगे।"

चर—जो हुक्म अन्नदाता! (अभिवादन कर प्रस्थान।)

सेनापति—(हंसकर स्वगत कथन) वैसे सेठ का विचार तो ठीक ही है, जो घोड़ी को वश में नहीं कर सकता, वह पत्नी को वश में क्या रखेगा।

वास्तव में यह भी वर की एक परीक्षा है। (जोर से सम्बोधन कर) नम्बर तीन ?

तीसरा सैनिक—(सावधान होकर) जी हुजूर।

सेनापति—अपनी अश्वशाला के सबसे तगड़े और चंचल दस काबुली घोड़े-घोड़ी छाँटें जाएं, उन्हें खूब मदिरा पिलाई जाए, खुर्री मालिश हो, आज शाम को हम उन पर सवारी करने का अभ्यास करेंगे। समझे ?

तीसरा सैनिक—समझ गया माई बाप, समझ गया। अभी सब प्रबन्ध किए देता हूँ (हन्टर फटकारते हुए सेनापति का प्रस्थान।)

पहला सैनिक—गीदड़ की मौत आती है तो गाव की तरफ भागता है। ऐसा लगता है सेनापति जी पर शतान सवार है, खुदा-खैर करे, कहीं हाथ पाँव तुड़ाकर घर न आएं।

तीसरा सैनिक—सचमुच वह घोड़ी है तो ऐसी ही। उस दिन घुड़-दौड़ में शीला जी को लेकर जब वह दौड़ रही थी तो ऐसा लग रहा था—जैसे हंसिनी पर सवार सरस्वती उड़ रही हो।

दूसरा सैनिक—वाह बेटा वाह ! तू तो कवि बनता जा रहा है।

तीसरा सैनिक—चूल्हे में गई तुम्हारी कविता, उठो सब लोग कड़ुआ करेला नीम पर चढ़ना चाहता है, बदमाश सेनापति के लिए बदमाश घोड़े तैयार करते हैं।

पहला सैनिक—नहीं ! नहीं !! गधे के लिए घोड़े तैयार करते हैं।

दूसरा सैनिक—(अपने सर पर हाथ मारकर) लो ! ये भी कवि बन गया। हो गई छुट्टी। नालायकों, सेनापति जी को तुम्हारी बातों की भनक पड़ गई तो खाल में भुस भरवा देंगे भुस, चलो उठो !

दोनों सैनिक—चलो ! चलो !!

—: पटाक्षेप :—

—: द्वितीय दृश्य :—

[मंच सज्जा—राजा रिसालू का वैभव सम्पन्न कक्ष। एक टेबुल पर मदिरा पात्र रखे हैं। चिन्तातुर राजा चहल कदमी करता हुआ मद्यपान कर रहा है। सेनापति का प्रवेश।]

सेनापति—तो दीवान जी के विवाह की खुशी में मदिरा पान हो रहा है ?

रिसालू—सेनापति जी, आप जले पर नमक छिड़क रहे हैं। हमारी हार का मजाक उड़ाने के लिए आप ही रह गए थे।

सेनापति—अपराध क्षमा हो देव ! हारे आप ही नहीं है मैं भी हारा हूं। कमबख्त घोड़ी क्या थी सिंहनी थी सिंहनी। आपने रकाब में पाँव तो रखा मुझे तो उसने पास फटकते ही ऐसा झटका दिया कि अभी तक जोड़-जोड़ दुख रहा है (रिसालू का हँसना) एक हारा दूसरे हारे की भला क्या मजाक उड़ाएगा।

रिसालू—(व्यंग से मुस्कराकर) हाँ मजाक तुम क्या उड़ाओगे सेनापति ! मजाक तो जीतने वाले दीवान जी उड़ाएँगे वहां उपस्थित बड़े-बड़े राजा रईस उड़ाएगें।

सेनापति—दुष्ट ने हमें तो भरी भीड़ में नंगा कर दिया। समारोह भी किया तो ऐसे ठाठ बाट का कि लोग वर्षों तक याद रखें।

रिसालू—नगर सेठ हरभजन क्या कोई साधारण आदमी है। जिसने अपनी हवेली केशर से रंगाई, उजड़े अग्रोहा का उद्धार किया वह क्या किसी राजा महाराजा से कम है ? पर उसकी असली दौलत है यह कामधेनु जैसी घोड़ी और रमणी रत्न शीला।

सेनापति—यह दोनों अलभ्य वस्तुएँ महाराज का प्राप्य थी, पर मिली मेहता जी को, पुरस्कार में शीला और दहेज में घोड़ी।

रिसालू—(क्रोध से) सिंह के देखते हुए उसका भोजन गीदड़ ले जाए ये बर्दाश्त से बाहर की बात है सेनापति ! जब से शीला ने मेहता जी के गले में वर माला पहनाई है, हमारे हृदय में होली सी धधक रही है।

सेनापति—पर अब किया क्या जा सकता है महाराज ! गीदड़ तो भोजन लेकर भाग चुका है ! अब तो उसका विवाह संस्कार होकर सुहागरात मनाने की तैयारी हो रही होगी।

रिसालू—(आवेश से पाँव पटककर) यह सुहागरात कभी नहीं मनेगी। (आदेशात्मक स्वर में) सेनापति जी तत्काल अपनी कुमुद लेकर दीवान जी की

हवेली को घर लिया जाए। सवेरे तक वह घोड़ी और शीला दोनों हमें मिल जानी चाहिए।

सेनापति—पर एक विवाहिता स्त्री....।

रिसालू—(जोर से) फेरे खा लेने से कोई विवाहिता नहीं होती सेनापति ! आप व्यर्थ बातों में समय खराब कर रहे हैं। जिसमें अपना हित हो वही राजनीति है।

सेनापति—(प्रणाम कर) जो आज्ञा महाराज। (प्रणाम कर प्रस्थान)

—: पटाक्षेप :—

—: तृतीय दृश्य :—

[मंच सज्जा—दीवान मेहताशाह की हवेली का सुसज्जित अन्तरंग प्रकोष्ठ पुष्पों की शैया सजी है, सुनहरी पर्यंक पर, मखमली गद्दों पर सिकुड़ी सिमटी दुलहिन बनी शीला का दिखाई देना। नेपथ्य से शहनाई के मधुर स्वर आना वर-वेश में दीवान मेहताशाह का शनैः शनैः प्रवेश करना शीला का स्वागतार्थ सलज्जता के साथ उठने का उपक्रम करना।]

मेहताशाह—नहीं ! नहीं !! प्रिए ! तुम्हारा तो इस घर में शुभागमन हुआ है, तुम्हें उठने की आवश्यकता नहीं है। स्वागत तो हमें करना चाहिए (समीप आते हुए अपने गले का पुष्पहार शीला को पहिना देते हैं।)

शीला—पति सेवा ही मेरा सर्वस्व है प्राण नाथ ! मैं तो इस घर की दासी हूं।

मेहताशाह—दासी नहीं स्वामिनी ! साथ ही हमारे हृदय की साम्राज्ञी ! मैं प्रायः नगर में चलते-फिरते तुम्हारी इस अद्वितीय घोड़ी को देखा करता था, दूध जैसा रंग, गर्दन पर घुघराले बाल, बड़ी-बड़ी आँखें और चँवर जैसी पूँछ। सोचता था जिसकी घोड़ी ऐसी है वो स्वयं कैसी होगी ?

शीला—(मुस्कराकर) और आपने गत वर्ष दीवाली पर लक्ष्मी जी के मन्दिर में मुझे लुक छिपकर देख ही लिया।

मेहताशाह—(हँसकर) देख ही नहीं लिया, कुल देवी से तुम्हें माँग भी लिया। उसी महामाया का आशीर्वाद तो आज फला है।

शीला—मैंने भी कई बार पिताजी से आपके गुणों की और सखी सहेलियों से रूप की चर्चा सुनी थी, उस दिन देखकर मन ही मन मैंने आपका वरण कर लिया था।

मेहताशाह—और जो महाराज या सेनापति जी की तरह मैं भी घोड़ी पर सवारी नहीं कर पाता या कोई अन्य विजयी हो जाता तो ?

शीला—ऐसा हो नहीं सकता था। किसी सती नारी की कामना आज तक विफल नहीं गई। आपके जीतने में तो मुझे तनिक भी आशंका नहीं थी, आशंका थी केवल महाराज और सेनापति जी की कुदृष्टि की ये, हारे जुआरी कुछ भी कर सकते थे।

मेहताशाह—(शीला की ठोड़ी ऊपर उठाकर) इस धरती के चाँद को देखकर देवताओं तक की नियत खराब हो सकती है फिर वे तो बेचारे मनुष्य ही हैं दोष उनका नहीं तुम्हारे सौंदर्य का है।

शीला—(शर्माते हुए) वाह ! प्रशंसा करने का ढंग भी कोई आप से सीखे (दोनों के अधर धीरे-धीरे समीप आते हैं। सहसा ही घबराए हुए एक सेवक का कुन्डी खट-खटाना।)

नेपथ्य से सेवक का स्वर—दीवान जी ! दीवान जी !! द्वार खोलिए दीवान जी !!

[दोनों चौंकते हैं, मेहता जी आगे बढ़कर द्वार खोलते हैं, सेवक का प्रवेश]

मेहताशाह—(क्रोधावेश में) इस असमय आने का कारण ?

सेवक—(हाँफता हुआ) सेनापति जी के नेतृत्व में राज सैनिकों ने सारी हवेली को घेर लिया है दीवान जी।

मेहताशाह—(आश्चर्य से) सैनिकों ने हवेली को घेर लिया हैं—मगर किस अपराध में ?

सेवक—अपराध कुछ नहीं महाराज ! वह पापी बोला "मैं राजाज्ञा से शीला देवी और उसकी घोड़ी को लेने आया हूँ—स्वेच्छा से नहीं दोगे तो शक्ति से ले जाऊँगा।"

शीला—(उठकर) मुझे पहले ही डर था ये कुचले नाग जो कुछ न करें थोड़ा है। (सेविका का घबराए हुए प्रवेश)

सेविका—(रोते हुए) गजब हो गया ! दीवान जी गजब हो गया !! आपके पिताजी को सेनापति ने मार डाला—(अश्रु पोंछकर) वे दृढ़ चट्टान बनकर द्वार पर डटे हुए थे बोले "पुत्र की सुहागरात में विघ्न नहीं पड़ने दूँगा' —पर सैकड़ों सैनिकों से अकेले कब तक जूझते।

शीला—हे प्रभो ! (मूर्छित होकर गिर पड़ती है)

मेहताशाह—(खूंटी से तलवार उतार कर म्यान से बाहर करते हुए सेविका से) तुम इसे (शीला की तरफ संकेत कर) संभालो मैं अभी देखता हूं उन आतताइयों को। (सेवक से) चलो मेरे साथ—(सेवक सहित शीघ्रता से प्रस्थान, सेविका शीला को पंखा झलती है गुलाब जल छिड़कती हैं।)

सेविका—बहू जी ! बहू जी !!

शीला—(नेत्र खोलकर) आह ! क्या सोचा था, क्या हो गया (बैठते हुए) मैं हतभागिनी हरे भरे घर का विनाश बनी, सिन्दूर ने सुहाग की एक रात नहीं देखी भगवती खूब है तुम्हारी लीला। (सिसकती है)

सेविका—धैर्य ! बहु धैर्य धारण कीजिए यों अधीर होने से कैसे काम चलेगा।

शीला—धैर्य ? (विक्षिप्त जैसे हसना) हः हः हः हः जाओ बहन एक गिलास पानी ले आओ।

सेविका—जो आज्ञा देवी ! (नत मस्तक होकर प्रस्थान)

शीला—(स्वगत कथन) नहीं। मैं अब नहीं सह सकती। मैं जीवित अमंगल हूं, अभिशाप हूँ। आते ही श्वसुर को डस लिया, कुछ देर और जीवित रही तो न जाने और किस-किस को खा लूँगी। नाश ! नाश !! सर्वनाश !!! मुझे इस घर को महानाश से बचाना ही होगा, अपने सुहाग की रक्षा करनी होगी—(उत्तेजित स्वर में) मैं सुहागिन मरूँगी ! मैं सुहागिन मरूँगी ! (अंगूठी से हीरा चूसती है, (शनैः शनैः चेहरे पर श्वेत कण व शिथिलता आने लगती है, सेविका पानी लेकर आती है शीला मूर्छित सी होने लगती है।)

सेविका—पानी ! बहुजी पानी !!

शीला—हः हः हः हः अब पानी नहीं गंगाजल दो। तुम्हारी बहुजी चली।

सेविका—(हाथ से गिलास गिर पड़ता है, रोते हुए चीखती है) अरे भागो ! भागो !! बहुजी को क्या हो गया (सर पीटकर) बहुजी ने क्या खा लिया ?

[सेठ हरभजनशाह का तेजी से घबराए हुए प्रवेश, सेविका का चीखते चिल्लाते प्रस्थान।]

हरभजनशाह—शीला ! शीला !! तूने यह क्या किया बेटी ? (रो पड़ता है) क्या किया ?

शीला—(मदहोश सी अर्द्ध खुले नेत्रों से करहाती हुई) खेल खतम हो चुका पिताजी। दीवारों से सर टकराने से क्या लाभ। व्यक्ति राज्य से नहीं लड़ सकता। विनाश की जड़ मैं हुं, मेरी बलि लिए बिना यह आग शान्ति नहीं होती इसलिए मैंने अंगूठी का हीरा चूस कर मर जाना ही श्रेयस्कर समझा।

हरभजनशाह—क्रूर विधाता तूने यह क्या किया (बिलखकर) मैंने यह कब सोचा था कि हथलेवे की मेंहदी सूखने से पहले बेटी को चिता में धरना होगा।

शीला—पिताजी यों जी छोटा करना व्यर्थ है—होनी को यही स्वीकार था। वह नराधम मेरे शरीर का स्पर्श करता तो दोनों कुल डूब जाते। सतित्व और देश धर्म की रक्षा के लिए अग्रवश की ललनाए इसी तरह अपना उत्सर्ग करती आई है। राणी सती भी तो इसी जाति और इसी पृथ्वी की पुत्री थी, एक घोड़ी ही के कारण तो उनका सुहाग लुटा था, सतित्व की रक्षार्थ ही उन्होंने अपने प्राण होम दिए थे। मैं आज उस इतिहास को ताजा करके जा रही हूँ। (शैथिल्य प्रदर्शन)

हरभजनशाह—(बैठकर गोद में लेते हुए) मेरी बच्ची ! मेरी बेटी !! (बिलखकर) हे परमात्मा ! मैंने ऐसा क्या किया, जो तूने मेरा बुढ़ापा बिगाड़ दिया।

शीला—पिताजी शहीदों की मौत पर रोया नहीं जाता, हंसा जाता है मैंने राज्य को गृह युद्ध से बचाया, परिवार को सर्वनाश से बचाया सैकड़ों निरपराधों की रक्षा अपना जीवन देकर की है, आपकी पुत्री का इससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा ? इस पुण्य बेला में हंसे, जी खोलकर हंसे, मुझे हँसकर विदा दें। (अटकते-अटकते) इस जन्म में नहीं अगले जन्म में मिलूँगी। विदा··· वि··· दा (गर्दन लुढक जाती है।)

हरभजनशाह—शीला ! शीला !! (ल्हाष को गले लगाकर) फूट-फूट कर रोता है। (राजा रिसालू, मेहताशाह तथा कुछ अन्य स्त्री पुरुषों का घबराए हुए आना।)

मेहताशाह— (देखकर) हैं ! यह क्या ? शीला चल बसी ! मुझे छोड़ कर चल बसी !! (ल्हाष के पास बैठकर सर पर हाथ रखकर बिलखता है) शीला ! शीला !! मैंने यह नहीं समझा था शीला कि तुम इतनी जल्दी छोड़ जाओगी। (व्यंगपूर्ण स्वर में) राजा रिसालू ! महाराज विनकैंड फिसिस !! अब तो खुश हैं आप ? (ल्हाष की तरफ इंगित कर) ये संभालिए अपने रूप की राख।

हरभजनशाह—(चीखकर ल्हाष को अपने पक्ष से लगाते हुए) नहीं ! हरगिज नहीं !! इस नीच के स्पर्स से बचने के लिए हो तो इस देवी ने अपना बलिदान दिया है। खबर दार जो मेरी पुत्री को छुआ भी।

रिसालू—मैं लज्जित हुं शाह जी, घुटने टेक कर) मुझे क्षमा करें। मैं राज मद में दीवाना था, वासना का अंधा था।

हरभजनशाह—चले जाओ यहाँ से, मैं तुम्हारी सूरत भी देखना नहीं चाहता। प्रजा वत्सल अग्रसेन की पुण्य धरा को तुमने कलंकित किया है।

रिसालू—सेठ जी ! आपका कथन सत्य है। सेनापति ने मेरी बुद्धि पर पर्दा डाल रखा था। मैंने प्यार से नहीं आतंक से राज्य किया, आज उसी का दुस्परिणाम सामने है। पता नहीं इस सति का श्राप मेरी क्या तुगति करेगा।

मेहताशाह—सेनापति की करनी का फल उसे मेरी तलवार ने दे दिया, गुप्तचरों द्वारा उसके मौत की खबर पाकर आप स्वयं सैन्य संचालन हेतु चले

आए। हः हः हः हः महाराज आपकी भी वही दुर्गति होती पर दासी द्वारा शीला के विषपान की सूचना मुझे यहाँ खेंच लाई—जिसके लिए सारा रक्त पात था जब वही नहीं रही तो किसके लिए लड़ूर (कमर से तलवार खोल कर फैंकते हुए) रह लो अपनी दीवान गिरी। चले जाओ यहाँ से। कहीं ऐसा नहीं हो कि मैं अपने नमक को भूल कर आपको भी सैनापति के पास पहुँचा दूं।

रिसालू—(तलवार उठाकर मेहता जी को देते हुए) मेहताजी ! क्या मुझे अपनी भूल के प्रायश्चित का अवसर नहीं देंगे ! एक बार भी क्षमा नहीं कर सकेगों।

मेहताशाह—(उत्तेजित होकर) नहीं। नहीं !!! नहीं जब मैं अपने आपको क्षमा नहीं कर सकता आपको कैसे करूं। मैं केवल सूर्योदय तक ही यहाँ हूं ! जिस देवी को कहारों के कंधे डोली में बैठा कर लाया था उसे कम से कम अपना कंधा लगा कर श्मशान तक पहुंचा हूँ। फिर ···

रिसालू—फिर···· ?

मेहताशाह—फिर शीला की प्राण प्रिय घोडी उसकी अमर निशानी लेकर सीधा श्यालकोट चल दुगा। मैं ऐसे पतितों के राज्य में एक क्षण भी नहीं रह सकता।

हरभजनशाह—पर इस अधम को जिन्दगी की शेश स्वांसे यहीं पूरी करनी होगी। यह धरती मेरी माँ है, मेरा सर्वस्व है, मेरी मिट्टी इसी अग्रोहा की मिट्टी में मिलेगी।

रिसालू—धन्य हो शाह जी ? धन्य हो !! सन्तान से भी बढकर मातृ भूमि से प्यार। सैनापति जी संसार से चले गए, दीवान जी राज्य से जा रहे हैं। मुझ अनाथ को आप भी छोड देते तो मेरा क्या होता ? आप मुझे अपना बेटा, समझें, धर्म का बेटा।

हरभजनशाह—मेरी बेटी के अभाव की पूर्ति कोई बेटा नहीं कर सकता महाराज ! मुझे मेरे हाल पर छोड दें। जो थोडा सा समय जीवन में बचा है, वह शीला की समाधि बनवाने, उसकी याद में रोने में ही कटेगा। नगर सेठ हरभजन शाह अब एक जीवित ल्हाष है, केवल ल्हाष।

रिसालू—हम यह घोषणा करते हैं कि हर नव रात्रि में सति शीला की समाधि पर मेला लगेगा, बच्चों के जडूले उतरेंगे, नव दम्पत्ति जोड़े से जात दगे ! उस घोड़ो की स्मृति में अब से हर दूल्हा घोडी पर बठ कर ही तोरण मारेगा, महा सति शीला का इतिहास अग्रोहा के पत्थर पत्थर पर स्वर्णाक्षारों में लिखा आएगा। [दीवान जी अपना साफा उतारकर उसे फैलाकर लहाष को ढक देते हैं रिसतालू पुष्प उछालते हुंए जय घोष करते हैं]

रिसालू—सति शीला की।

सब लोग—जय।

रिसालू—महामाया शीला की।

सब लोग—जय।

नैपथ्य से—(उच्च; किन्तु करुण स्वर में)

सति शीला का यश रहा, रही रूप की राख।
नृप रिसालू की मिट गई, वह ऐतिहासिक साख॥

—: पटाक्षेप :—

लेखक का साहित्यिक परिवार

प्रकाशित

△ **तीन एकांकी**—नाटक संग्रह —सुनिल प्रकाशन मन्दिर, आगरा
△ **महाराज श्री अग्रसेन**—नाटक—अग्रगामी, जयपुर
△ **रूण्डहर बता रहे हैं**—कहानी संग्रह—बन्धु प्रकाशन मन्दिर, आगरा
△ **अग्रसेन गीताँजलि**—समूह गीत—अग्रसमिति अजमेर
△ **जीजा की जलेबिया**—हास्य कविता संग्रह—राजस्थानी साहित्यकार सम्मेलन, अजमेर
△ **मसखरी**—राजस्थानी कविता संग्रह—दीवट प्रकाशन, कलकत्ता

प्रकाशनाधीन :

दृश्य काव्य—राजनर्तकी, सोमनाथ की सांझ, संगीत की मौत, निर्दोष आंखें, अछूता आँचल, हिमालय की आग, बुद्ध का महाभिनिस्क्रमण, रेजगारी का रोजगार, कैसे पढूँ, संस्कृतियों का देश, मैंने देखी जग की रीत, (राजस्थानी नाटक)—ऐ····ओ टपको, गुडकणा जी।

श्रव्य काव्य—बिखरे मोती, बेतुकी, मत चूके चह्वान, शब्द भेदी, अर्चना, नेता, मैं वह बूँद (हिन्दी कविता संग्रह)। बालुराकण, बंअरबा, बीदडी, गीत रे गाँव, ढोला रे ढमके, (राजस्थानी कविता संग्रह)।

निबन्ध लेख—नन्दी में राटोल (राजस्थानी) अरावली की चोटी से (हिन्दी)।

सामाजिक साहित्य—जातिरी जाजम सूँ (राजस्थानी समूह व अभिनय गीत) समय का स्वर (हिन्दी कविता संग्रह) सम्मेलनों के मंच से (निबन्ध संग्रह)

अन्य साहित्य—अटकण वटकण (बाल साहित्य) हें चोथ बिदेयाक जी महाराज (राजस्थानी लोक रचनाएँ) बस और नहीं (परिवार नियोजन सम्बन्धी कविताएं) वीस सूत्री का सूर्य (बीस सूत्री योजना पर)

श्री त्रिलोक गोयल

△ जन्म—२८ जनवरी १९३२, अजमेर

△ शिक्षा—प्रभाकर, आई०जी०डी०, एम०ए०, बी०एड०

△ सम्प्रति—वरिष्ठ अध्यापक अग्रवाल उ०मा०वि० अजमेर

△ निवास—अग्रसेन नगर, अजमेर।

—: सामाजिक साहित्यिक मचों पर :—

संचालक—अग्र समिति, संचालक-सरस्वति साधना सदन, महामत्री—राजस्थानी साहित्यकार सम्मेलन, संयोजक-चितेरा, सम्पादक—अग्रबन्धु, आदित्य भू० पू० मं० शिक्षक संदेश, भू० पू० पुंजनायक, अग्रसेन चरपुंज, भू० पू० संचालक—वायज क्लब, भू० पू० मंत्री कला संगम, भू० पू० अध्यक्ष राजस्थानी वि० अन्तर्भारती साहित्य एवं कला परिषद् एवं अनेक संस्थाओं के कर्मठ सदस्य।

विशेष—जहां स्नेह. सौम्यता, सरलता श्री गोयल को विरासत में मिले हैं वहां मंच सिद्धता और कला उनमें जन्मजात है। मंच साहित्य का हो या समाज का, नाटक का हो या कवि सम्मेलन का आप बिना सूना-सूना सा लगता है। चित्रकला हो या संगीत कला, अभिनय कला हो या काव्य कला वक्तृत्व कला हो या पाककला कला ! कला !! और कला !!! सम्पूर्ण जीवन ही कलामय हो गया है या यों कहा जाएं कि मस्ती से जीने की कला और सहज ही किसी को अपना बना लेने की कला उनमें ईश्वर प्रदत्त है।

मानव समाज के प्रति आस्थावान त्रिलोक जी, हर समाज के कार्यों में रुचि पूर्वक योगदान देने के कारण हर समाज को अपने से लगते हैं। अग्रवाल समाज की जो सेवाएं उन्होंने की है वे अक्षुण्य है, अभून पूर्व है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने हमेशा समय की नब्ज को पहिचानकर कलम उठाई। समस्याओं के निवारणार्थ सहज व प्रभावशाली मार्ग चयन किया। सदैव आशावान रहते हुए उन्होंने व्यावहारिक और मानवतावादी पक्ष को ही स्वीकारा, मीठे व्यंग करते हुए हर बात को राष्ट्रीय परिपेक्ष में देखा, उनका साहित्य जीवन से कभी दूर नहीं रहा। दूसरे शब्दों में अपने जीवन को मंच पर और मंच को साहित्य में उतारा। वह साहित्यिक प्रतिभा अग्रवाल समाज का गर्व, सुषमा और सौभाग्य है।

—प्रकाश बंसल

श्री त्रिलोक गोयल

जन्म—२८ जनवरी १९३२, अजमेर।
शिक्षा—प्रभाकर, आई जी डी., एम. ए., बी. एड.।
सम्प्रति—वरिष्ठ अध्यापक अग्रवाल उ० मा० वि० अजमेर।
निवास—अग्रसेन नगर, अजमेर।

—: **सामाजिक साहित्यिक मंचों पर** :—

संचालक अग्र समिति, संचालक सरस्वती साधना सदन, महामन्त्री राजस्थानी साहित्यकारसम्मेलन, संयोजक चितेरा, सम्पादक अग्रबन्धु, आदित्य, भू० पू० सं० शिक्षक संदेश, भू० पू० पुञ्जनायक अग्रसेन चरपुञ्ज, भू० पू० संचालक बायज़ क्लब, भू० पू० मंत्री कला संगम, भू० पू० अध्यक्ष राजस्थानी वि० अन्तर्भारती साहित्य एवं कला परिषद् एवं अनेक संस्थाओं के कर्मठ सदस्य।

विशेष—जहाँ स्नेह, सौम्यता, सरलता श्री गोयल को विरासत में मिले हैं वहाँ मंच सिद्धता और कला उनमें जन्मजात है। मंच साहित्य का हो या समाज का, नाटक का हो या कवि सम्मेलन का आप बिना सूना-सूना सा लगता है। चित्रकला हो या संगीत कला, अभिनय कला हो या काव्य कला, वक्तृत्व कला हो या पाककला कला ? कला ?? और कला ??? सम्पूर्ण जीवन ही कलामय हो गया है। या यों कहा जाए कि मस्ती से जीने की कला और सहज ही किसी को अपना बना लेने की कला उनमें ईश्वर प्रदत्त है।

मानव समाज के प्रति आस्थावान त्रिलोक जी, हर समाज के कार्यों में रुचि पूर्वक योगदान देने के कारण हर समाज को अपने से लगते हैं। अग्रवाल समाज की जो सेवाएँ उन्होंने की हैं वे अक्षुण्य है, अभूत पूर्व है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने हमेशा समय की नब्ज को पहिचानकर कलम उठाई। समस्याओं के निवारणार्थ सहज व प्रभावशाली मार्ग चयन किया। सदैव आशावान रहते हुए उन्होंने व्यावहारिक और मानवतावादी पक्ष को ही स्वीकारा, मीठे व्यंग करते हुए हर बात को राष्ट्रीय परिपेक्ष में देखा, उनका साहित्य जीवन से कभी दूर नहीं रहा। दूसरे शब्दों में अपने जीवन को मंच पर और मंच को साहित्य में उतारा। यह साहित्यिक प्रतिभा अग्रवाल समाज का गर्व, सुषमा और सौभाग्य है।

—प्रकाश बंसल